chapter-3

: तृतीय अध्याय :

डॉ. नरेन्द्र कोहली के रामायण तथा महाभारत के कथावस्तु पर आधारित पौराणिक उपन्यास

: तृतीय अध्याय :

डॉ. नरेन्द्र कोहली के रामायण तथा महाभारत के कथावस्तु पर आधारित पौराणिक उपन्यास

प्रास्ताविक :

'उपन्यास' इस नये युग की नयी विधा है। हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' से माना जाता है। प्रेमचंद पूर्व के उपन्यास औपन्यासिक कला की दृष्टि से अपरिपक्व, स्थूल-कथावस्तुप्रधान, बोधप्रधान तथा मनोरंजनप्रधान थे। उनमें चरित्र-चित्रण की पद्धति पूर्णतया विकसित नहीं हुई थी। हिन्दी उपन्यास को उसकी वास्तविक पहचान और गौरव मुंशी प्रेमचंद के कारण प्राप्त हुआ और मानव-चरित्र की सर्वप्रथम पहचान भी हमें उनके उपन्यासों से होती है। प्रेमचंदजी उपन्यास को सामाजिक-राजनीतिक सरोकारों से जोड़ते हैं। उनका उपन्यास-लेखन सोद्देश्य है। बिना प्रयोजन के उन्होंने अपने जीवन में एक पंक्ति तक नहीं लिखी है। और उनका प्रयोजन भी वैयक्तिक न होकर सामाजिक या समष्टिगत था। उनके उपन्यास आदर्शवाद, आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद से लेकर यथार्थवाद की ओर अग्रसरित हुए हैं।

हमारा आलोच्य विषय 'पौराणिक उपन्यासों से सम्बन्धित है। पौराणिक उपन्यासों की प्रवृत्ति हमें प्रेमचन्दोत्तरकाल में मिलती है। प्रेमचन्दोत्तर काल में प्रस्तुत प्रवृत्ति हमें प्रायः साठोत्तरी और समकालीन उपन्यासों के काल में मिलती है। पौरणिक उपन्यासों का सूत्रपात एक प्रकार से डॉ. नरेन्द्र कोहली द्वारा हुआ। अपने पूर्ववर्ती अध्यायों में हमने पौराणिक उपन्यासों तक की उपन्यास की विकास-

रेखा को स्पष्ट किया है। कतिपय पौराणिक उपन्यासों का उल्लेख भी वहां हुआ है। द्वितीय अध्याय के अंतर्गत हमने पौराणिक उपन्यास की विभावना को स्पष्ट करने का यत्न किया है और इतिहास और पुराण के अंतर को स्पष्ट करते हुए दोनों के प्रमुख अभिलक्षणों को दृष्टिपथ में रख कर उनके अंतर को स्पष्ट किया है। और उसी पृष्ठभूमि के आधार पर पौराणिक उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यासों से किस प्रकार भिन्न है और पौराणिक उपन्यासों के व्यावर्तक लक्षण क्या हो सकते हैं उसकी विस्तृत सोदाहरण चर्चा की है। वहाँ पर यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि पौराणिक उपन्यासों की कथावस्तु पौराणिक होते हुए भी वह पुरा-कथाओं का पुनरावर्तन मात्र नहीं है। वह पुरा-कथा नहीं उपन्यास है और इसलिए एक पौराणिक उपन्यास को उपन्यास की शर्तों पर भी खरा उतरना होता है। यथार्थधर्मिता उपन्यास का प्राण-तत्व है और उसका निर्वाह पौराणिक उपन्यासकार को भी करना पड़ता है या करना चाहिए। पौराणिक उपन्यासकार वस्तु भले ही पुराणोंसे लेता है,किन्तु उसकी दृष्टि तो अपने समाज और उसकी समस्याओं पर निरन्तर बनी रहती है। दूसरे शब्दों में कहें तो पौराणिक उपन्यासकार भले ही अपना कथानक अति-प्राचीन काल से लेता है, किन्तु वर्तमान से भी उसका सम्बन्ध बराबर बना रहता है। सच्चा या आदर्श पौराणिक उपन्यास वही कहा जायेगा जिसमें वर्तमान समस्याओं का अनुसंधान पौराणिक कथानकों के आलोक में होगा। प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम डॉ. नरेन्द्र कोहली के पौराणिक उपन्यासों पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करने का रहेगा। पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम निरुपित कर चुके हैं कि वास्तविक पौराणिक उपन्यासों का सूत्रपात डा. नरेन्द्र कोहली ने किया। डा. नरेन्द्र कोहली ने अपने लेखन का प्रारंभ तो सामाजिक उपन्यासों तथा व्यंग्य-लेखन से किया था, किन्तु रामायण की कथावस्तु पर आधारित 'दीक्षा' उपन्यास की अभुतपूर्व सफ़लता से प्रेरित होकर उनहोंने रामायण की कथावस्तु पर ही दूसरे तीन उपन्यासों का सृजन किया -- 'अवसर' , 'संघर्ष की ओर' तथा 'युद्ध'। ये चारों उपन्यास पहले स्वतंत्र रुप से अलग-अलग प्रकाशित हुए थे; परन्तु बाद में इन चारों का संकलन 'अभ्युदय भाग-1' और 'अभ्युदय भाग-2' में कर लिया गया है।

प्रस्तुत अध्याय में इन उपन्यासों के विश्लेषण में जो संदर्भ दिए गए हैं, उनको इन दो खन्डों से ही लिया गया है। रामायण पर आधृत उपन्यासों के उपरान्त उनका मन इन पौराणिक उपन्यासों में इतना रमा और इन पर उनकी ऐसी हथौटी बैठ गयी कि उन्होंने हमारें दूसरे महाकाव्य 'महाभारत पर भी आठ उपन्यासों का सृजन किया— 'बंधन', 'अधिकार', 'कर्म', 'धर्म', 'अंतराल', 'प्रच्छन्न', 'प्रत्यक्ष' और 'निर्बन्ध'। इन उपन्यासों को 'महासमर' भाग 1 से 'महासमर' भाग -8 के रुप में भी जाना जाता है। इस बीच में उन्होंने कृष्ण-सुदामा की मैत्री के वृतान्त पर 'अभिज्ञान' नामक पौराणिक उपन्यास भी लिखा है, किन्तु प्रस्तुत अध्याय में हमारा प्रतिपाद्य केवल उनके वे पौराणिक उपन्यास हैं जो 'रामायण' और 'महाभारत' की वस्तु पर आधृत हैं। किन्तु अध्याय के प्रारंभ में बहुत संक्षेप में उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों की भी चर्चा की गई है, क्योंकि 'दीक्षा' और बाद के उपन्यासों के सृजन में कहीं-न-कहीं उनकी चेतना में वे सामाजिक सरोकार रहे होंगे।

डॉ. नरेन्द्र कोहली के पूर्ववर्ती प्रारंभिक उपन्यास:

डॉ. नरेन्द्र कोहली का लेखन बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक से शुरु होता है। उनके प्रारंभिक उपन्यासों में 'मेरा अपना संसार', 'एक ही विकल्प', 'पुनरारंभ', 'आतंक', 'साथ सहा गया दु:ख', 'आश्रितों का विद्रोह' तथा 'जंगल की कहानी' आदि की गणना कर सकतें है। उनके शुरु के तीन उपन्यास निहायत अपरिपक्व है। 'जंगल की कहानी' भी एक सामान्य प्रकार का विश्रृंखल और बेतरतीब उपन्यास है। इस प्रकार उक्त उपन्यासों में 'आतंक', 'साथ सहा गया दु:ख' और 'आश्रितों का विद्रोह' ही कुछ गंभीर प्रकार के सामाजिक उपन्यास हैं।

'मेरा अपना संसार' में डॉ. कोहली के दो लघु उपन्यास संकलित हैं – 'मेरा अपना संसार' तथा 'एक ही विकल्प'। ये दो उपन्यास क्रमश: अस्सी और उन पचास पृष्ठों में सिमट गये हैं। इन उपन्यासों के संदर्भ में डॉ. सुषमा गुप्ता की व्यंग्यात्मक टिप्पणी उल्लेख्य रहेगी – "यदि लेखक के पास कहने को कुछ कम है तो

फ़िर उनको औपन्यासिक रुप क्यों दिया जाय? इसमें न चरित्रों का विकास हो पाता है और न समस्याओं का समाधान। अच्छा हो लेखक इन्हें लम्बी कहानियां घोषित करें तथा उनको कहानी के गुण-अवगुण की द्रष्टि से प्रस्तुत करें।"[1] आश्चर्य इस बात का होता है कि जो लेखक अपने लेखन के प्रारंभ में अल्प-वस्तुत्व की समस्या से पीड़ित था वह बाद में वस्तु-आधिक्य का स्वामी कैसे हो गया कि डॉ. विवेकीराय जैसे आलोचक उनको 'अप्रतिम कथायात्री' का बिरूद देते हैं और जो हजारों पृष्ठों के बृहदकाय उपन्यास लिखने में समर्थ हो जाते हैं।

जो भी हो उपन्यास- 'मेरा अपना संसार' बेहद कमजोर उपन्यास हैं। उपन्यास की नायिका कविता कस्बाई वातावरण से महानगर दिल्ली में आती हैं क़्योंकि एक हाईस्कूल में अध्यापिका के रुप में उसकी नियुक्ति हुई है। कविता जहाँ बहुत विधारवान और भीरु किसम की लड़की है, वहां नायक शैलेश एक 'स्नोब' किस्म का युवक है। कविता की नियति कुछ-कुछ 'पचपन खंभे लाल दीवारें' (उषा प्रियंवदा) की सुष्मा जैसी है।

'एक ही विकल्प' को तो उपन्यास भी नहीं कह सकते। वह एक लम्बी कहानी है जो रानी नामक एक लड़की के इर्द-गिर्द चक्कर काटती है।देवी-देवताओं की आड़ में पनपने वाले अनैतिक भ्रष्टाचार का पर्दाफ़ाश लेखक ने किया है। मां-बाप, भाई-बहन, देवर-भाभी किसीको भी नंगा करने में लेखक तनिक भी हिचका नहीं है। एक हद तक उसे अश्लील भी कहा जा सकता है।द्वारिकाप्रसाद के उपन्यास 'घेरे के बाहर' की याद ताजा हो जाती है।[2]

'पुनरारंभ' को तो हेनरी जेइम्स की परिभाषा के मुताबिक उपन्यास भी नहीं कह सकते क्योंकि यह उपन्यास लेखक ने अपने पिताजी के अनुभवों के आधार पर लिखा है।स्वयं लेखक इस संदर्भ में कहते हैं—"यह उपन्यास कुछ इस ढंग से लिखा गया कि कोई व्यक्ति लकड़ी का गट्ठर आपके सामने डाल दे कि इसका जो चाहे बना दो।इस उपन्यास को लिखना मेरे लिए एक प्रकार से उपन्यास लिखने के अभ्यास का-सा काम था"।[3]

उपर्युक्त तीन रचनाओं को हम लेखक के प्रयोग-काल की कृतियां कह सकते हैं।

वस्तुतः सन 1971 में राज़पाल से प्रकाशित 'आतंक' को ही हम डॉ. कोहली की गंभीर रचना कर सकते हैं। इसमें लेखक ने मध्यवर्ग में व्याप्त आतंक और संत्रास को यथार्थ रुप में चित्रित किया है। भ्रष्टाचार और मुखौटावादी हमारी नपुंसक संस्कृति ने समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आहत, कुंठित और आतंकित कर दिया है। हमारा समाज़ तरह-तरह के आतंकों से ग्रस्त है। इसमें सबसे ज्यादा और बड़ा आतंक पुलिस, गुण्डे और नेताओं का है। इसमें डॉ. कोहली के कालेज काल के कुछ अनुभवों को भी खराद पर चढ़ाया है। कालेज में हर रोज लड़ाई-झगड़े, मार-पीट और गुण्डागर्दी होती है पर कोई कुछ नहीं कर सकता। प्रस्तुत उपन्यास का डॉ. राजेश कपिला एक ऐसा बुद्धिजीवियों चरित्र है जो खूब सोचता है, लिखता है, किन्तु संघर्ष के प्रत्येक मौके पर कतरा जाता है। बुद्धिजीवियों की इस निर्वीर्य निष्क्रियता के संदर्भ में स्वयं लेखक का कथन है—"बुद्धिजीवियों के इस वर्ग में चिंतन ही चिंतन है,कर्म नहीं, उन्हें अपने कर्म के लिए कोई और व्यक्ति चाहिए। ऐसा ही चरित्र 'आतंक' के डॉ.राजेश कपिला का है। लोगों ने अनेक बार पूछा कि क्या मैंने अपनी आत्मकथा लिखी है? मैं उन्हें समझा नहीं पाता कि यह सारे बुद्धिजीवी वर्ग की आत्मकथा है जिनमें से मैं भी एक हूं।"[4]

डॉ. नरेन्द्र कोहली के औपन्यासिक लेखन में 'आतंक' का सविशेष महत्व रहेगा, क्योंकि उसमें निरुपित परस्थितियों ने लेखक के मानस को इतना आलोड़ित-विलोड़ित किया है कि इसके कारण ही लेखक 'दिक्षा' उपन्यास लिखते हैं जिसे हम उनके औपन्यासिक जीवन का एक नया मोड़ कह सकते हैं।

'साथ सहा गया दु:ख' (1974) डॉ. कोहली का वैयक्तिक पारिवारिक उपन्यास है।प्रस्तुत उपन्यास की त्रासदी लेखक की अपनी त्रासदी है।डॉ. कोहली तथा उनकी पत्नी माधुरीजी दोनों अलग-अलग कालेज में व्याख्याता-पद पर काम कर रहे थे।फ़लतः आर्थिक संकटों से निजात पा चुके थे और उनका दाम्पत्य-जीवन भी सुखद ही था,

परंतु प्रथम नवजात पुत्री का असामयिक निधन, उसके बाद दूसरे जो जुड़वां बच्चे (पुत्र-पुत्री) हुए उनमें भी पुत्री का निधन हुआ। पुत्र जो बच गया उसकी लम्बी बिमारी, इन दुखद घट्नाओं के कारण लेखक-दम्पति को भयंकर त्रासदी से गुजरना पड़ा।उन दिनों के उनके अस्पताल, डाक्टर्स, नर्स, सरकारी तंत्र आदि के जो अनुभव हुए उन पर यह उपन्यास आधारित है। उपन्यास के नायक-नायिका अमित और सुमन वस्तुतः डॉ. कोहली और माधुरीजी ही हैं।उन दिनों लेखक-दंपति अपने बच्चे की जिन्दगी के लिए तमाम संभव प्रयत्न करते हैं। डाक्टरों के अलावा वैद्य, हकीम, तंत्र-मंत्र, पूजा-पाठ आदि सब कर गुजरते हैं। उसके बाद तीसरी प्रसूति में जो बच्चा पेदा होता है वह पूर्णतः स्वस्थ था। स्वस्थ बच्चे को पालने का जो एक आंतरिक सुख होता है उसका अनुभव उनको इसी बच्चे से होता है। 'साथ सहा गया दुःख' इस बच्चे के जन्म के पूर्व के दुखद-त्रासद अनुभवों पर आधृत है। इस दृष्टि से इसकी तुलना अमृतराय के उपन्यास 'सुख-दुःख' के साथ कर सकते हैं। इस उपन्यास में निरुपित यथार्थ सच्चे अर्थों में उनका भोगा हुआ यथार्थ है। पर इन अनुभवों के कारण डॉ.कोहली के जीवन में एक नया मोड़ आता है। इसके पहले लेखक मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित था और उसके लेखन का 'टोन' अधिकांशतः व्यंग्यात्मक प्रकार का था। एक व्यंग्य-लेखक के रुप में लेखक अपनी पहचान बना चुके थे, परंतु यहां से जो 'यू' टर्न आता है वह उनको पौराणिक उपन्यासों की और ले जाता है। इस दृष्टि से इस उपन्यास का एक विशेष महत्व है।

'आश्रितों का विद्रोह' व्यंग्यात्मक उपन्यास है। स्वाधीनता के बाद हमारे देश में जो भ्रष्टाचार, कदाचार, अराजकता, हरामखोरी, भाई-भतीजावाद आदि का बोलबाला हुआ उनको केन्द्र में रखकर यह उपन्यास लिखा गया है। विविध क्षेत्रों में आये दिन होने वाली हड़तालों के कारण जो जनजीवन ठ्प्प हो जाता है और उसके कारण लोगों को जो तरह-तरह की परेशानियों से गुजरना पड़ता है। इन यथार्थ जीवनानुभवों पर उपन्यास आधारित है। उपन्यास का प्रारंभ एक छोटी-सी घट्ना से होता है। बस-स्टोप पर लड़के-लड़कियां,

अध्यापक आदि खड़े थे, पर हड़ताल के कारण बस नहीं आती। लोग पैदल चलना शुरू करते हैं। फ़िर यह प्रयोग अन्य क्षेत्रों में भी होता है।लोगों के इस असहयोग के चलते ड्राईवर, कण्डक्टर तथा अन्य सरकारी कर्मचारियों को अपनी नौकरी खतरे में पड़ती नजर आती है और फ़लतः वे जनता के स्वामी से जनता के सेवक की भूमिका में आ जाते है।वस्तुतः यह महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन से समानता रखता है। अभी कुछ वर्ष पूर्व आयी 'लगे रहो मुन्ना भाई' में जिस 'गांधीगिरी' की बात कही गयी है, कुछ उस प्रकार की बात इस उपन्यास में है।

'जंगल की कहानी' 1977 लेखक के अन्य उपन्यासों से कुछ अलग है। उसमें जंगल, उसमें बसनेवाले जानवर, उनकी प्रवृत्तियां, जंगल का प्रेम, जंगल में होनेवाली हिंसात्मक प्रवृत्तियां आदि का वर्णन लेखक ने किया है। प्रस्तुत उपन्यास की कहानी भी जंगल की तरह उबड़-खाबड़ और बेतरतीब है। श्रवणकुमार गोस्वामी के उपन्यास 'जंगलतंत्रम' की भांति उसे व्यंग्यात्मक या प्रतीकात्मक बनाने का प्रयत्न भी लेखक ने नहीं किया है। इसे पर्यावरण पर लिखी कोई सामान्य किताब कह सकते हैं।

डॉ. कोहली के रामायण तथा महाभारत पर आधारित उपन्यासः

अब हमारा उपक्रम डॉ. नरेन्द्र कोहली के पौराणिक उपन्यासों पर आलोचनात्मक द्रष्टिपात करने का रहेगा।जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों में निरुपित किया गया है, डॉ. कोहली ने सर्वप्रथम रामायण की कथावस्तु पर 'दीक्षा' उपन्यास लिखा।यद्यपि 'दीक्षा' अपने आप में एक स्वतंत्र उपन्यास है, उसे रामायण श्रृंखला के उपन्यास के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। उपन्यास की रचना-प्रक्रिया के दौरान ही लेखक ने रामायण की कथावस्तु को लेकर चार अलग-अलग उपन्यासों की योजना बना ली थी। इन चारों उपन्यासों को लेखक ने इस तरह लिखा है कि वे अपने आप में स्वतंत्र उपन्यास भी हैं और

उपन्यास-शृंखला के विभिन्न मोती भी है। यहां इन उपन्यासों पर हम क्रमश: विचार करेंगे।

(1) दीक्षा (1976):

'दीक्षा' डॉ. नरेन्द्र कोहली का रामायण उपन्यासमाला का प्रथम उपन्यास है। यदि डॉ. कोहली के प्रारंभिक साहित्य को देखा जाये तो स्पष्ट्तः परिलक्षित होता है कि उनकी रुझान समाजवादी विचारधारा से प्रभावित सामाजिक उपन्यासों की और थी। हिन्दी में एक विशिष्ट व्यंग्यकार के रूप में भी वह उभर रहे थे, किन्तु अचानक पौराणिक उपन्यासों की और उनकी जो रुझान हुई उसके पीछे कतिपय तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियां थीं।लोग कई प्रकार के आतंकों के बीच जी रहे थे। दिन-दहाड़े हत्याएं होती थीं। बलात्कार, अपहरण और फ़िरौती के किस्से बढ़ रहे थे। कालेज गुण्डागर्दी के अड्डे बन गये थे। सत्तासीन और शक्तिसंपन्न वर्ग (नवधनिक वर्ग) के लड़के किसी भी राह चलते लड़के या लड़की को बेइज्ज्त कर सकते थे। कई अध्यापक, जिनमें लेखक भी एक है, इन घटनाओं के मूक-साक्षी बनकर रह जाते है। बुद्धिजिवी वर्ग के लोग अंदर ही अंदर सुलगते और भुनभुनाते रहते थे। 'आतंक' उपन्यास उसीका परिणाम था। उन्हीं दिनों में बिहार के पारसबिगहा में एक अत्यन्त घिनौनी शर्मनाक घट्ना घटित होती है। मजदूरी के योग्य पारिश्रमिक की मांग करनेवाले दलितों के न केवल झोंपड़े जलाये जाते हैं, न केवल उनकी स्त्रियों को बलात्कृत किया जाता है, अपितु उनके गुप्तांगो को दागा जाता है। और तभी सन् 1971 में बांगला देश (तब पूर्व पाकिस्तान) के बुद्धिजीवियों का आंदोलन शुरु हो जाता है। उनके नेता बंगबंधु शेख मुजिबर रहमान थे। पाकिस्तानी सरकार को अमरिका का समर्थन था, और उसीके जोर पर पाकिस्तानी सेना बांग्लादेश की मुक्तिवाहिनी के सैनिकों पर नृशंस अत्याचार कर रहे थे। तभी तत्कालीन प्रधानमंत्री लौह-संकल्पिनी श्रीमती इन्दिरा गांधी ने शेख मुजिबर का पक्ष लेते हुए भारतीय सेना को वहां भेजा था। भारतीय सेना ने मुक्तिवाहिनी के साथ मिलकर युद्ध किया था। पाकिस्तान की एक लाख की सेना को बंदी बनाया था और तभी एक

नये देश—बांगला देश—का निर्माण हुआ था। युद्ध में जीत के उपरान्त श्रीमती गांधी ने सत्ता के सूत्र मुजिबर रहमान के हाथों सौंप दिए थे जो उस आंदोलन के मुख्य नेता थे।

वैसे युद्ध की बात आते ही हमारा पहला ध्यान 'महाभारत के युद्ध' की ओर जाता है, परंतु बांग्लादेश के निर्माण हेतु किया गया यह युद्ध अनेक दृष्टियों से रामायण के राम-रावण युद्ध के समान लगता है। इस संदर्भ में स्वयं लेखक के मंतव्य को हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट कर चुके हैं। डॉ. कोहली के मन पर इस युद्ध का गहरा प्रभाव पड़ता है और उनके भीतर रामायण को लेकर उपन्यासमाला के सृजन के विचार प्रबल हो उठ्ते है जिसका पहला उपन्यास है—'दीक्षा'। 'दीक्षा' का हिन्दी जगत में स्वागत होता है और उसे अश्रुतपूर्व सफ़लता मिलती है, जिसके कारण लेखक अपनी योजना में आगे बढ़ते हैं।

'दिक्षा' लगभग 190 पृष्ठों का उपन्यास है। उपन्यास का प्रारंभ विश्वामित्र के सिद्धाश्रम में होनेवाली राक्षसों की नृशंस प्रवृत्तियों से होता है। विश्वामित्र त्रस्त है। रावण द्वारा प्रेरित राक्षसों का त्रास व आतंक दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा था। अतः विश्वामित्र उद्विग्न हो उठ्ते हैं और अयोध्या-नरेश दशरथ के दरबार में जा पहुंचते हैं। विश्वामित्र को दिन-रात विलासी प्रवृत्तियों में डूबे रहने वाले दशरथ से तो कोई उम्मीद नहीं थी, परंतु उनके सूचना-तंत्र ने उनको बताया था कि दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र राम वीर क्षत्रिय है और उसकी रूचि प्रजा-कल्याण के कामों में भी हैं। विश्वामित्र को पक्का विश्वास है कि सिद्धाश्रम और उसके आसपास जो राक्षसी प्रवृत्तियां पनप रही है उनको रोकने की क्षमता केवल राम में ही है, फ़लतः वह दशरथ से राम को मांगने के लिए राजसभा में उपस्थित होते हैं। दशरथ पहले तो कुछ ननानुच करते हैं, परंतु ऋषि के सात्विक क्रोध से अंततः वह राम-लक्ष्मण को ऋषि के साथ भेजने के लिए तैयार हो जाते हैं। यद्यपि राम-लक्ष्मण की प्रारंभिक शिक्षा तो गुरु वसिष्ठ द्वारा हो चुकी थी, परंतु राम-लक्ष्मण को सच्ची क्षात्र-दीक्षा तो विश्वामित्र से ही प्राप्त होती है।

'दीक्षा' और बाद के तीन उपन्यासों में राम-लक्ष्मण और सीता की जो गतिविधियां हैं, उनका जो चिंतन है, उनके चिंतन की जो दिशा है, उसके उत्स में गुरु विश्वामित्र द्वारा प्रदत्त यह 'दीक्षा' ही है। अत:उपन्यास का शीर्षक 'दीक्षा' हर दृष्टि से सार्थक, सटीक एवं उपयुक्त है।

दशरथ के सभागृह में जाकर सम्राट को कुछ डांट-फ़ट्कार, उपालंभ, व्यंग्य और कटाक्ष के उपरांत विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण को लेकर प्रस्थित होना; रास्ते में उन्हें अनेक प्रकार की शिक्षा-दीक्षा देना, क्षत्रिय-धर्म और राजा के उत्तर-दायित्वों से उन्हें परिचित कराना, राम-लक्ष्मण को शस्त्रास्त्रों का जो ज्ञान था उसमें अभिवृद्धि कराना, उनको कुछ दिव्यास्त्रों का ज्ञान देना, राम-लक्ष्मण का सिद्धाश्रम पहुंचकर ताड़का-सुबाहु आदि राक्षसों का वध करते हुए सिद्धाश्रम तथा आसपास के परिवेश को भयमुक्त करना; गहन नामक आदिवासी युवक से परिचित होना, दशरथ के क्षेत्र-नायक बहुलाश्व को प्रताड़ित करना, आदिवासी युवती वनजा को पुन: समाज में प्रतिष्ठित कराना, अहल्या-प्रसंग, अहल्या का उद्धार, अहल्या-राम संवाद, सिद्धाश्रम का कार्य पूर्ण होने पर विश्वामित्र का सीरध्वज राजा जनक की राजधानी मिथिला की और प्रस्थान करना, विश्वामित्र के द्वारा राम-लक्ष्मण को सीता के जन्म-कुल आदि के संदर्भ में कुछ संकेत देना, सीता के अज्ञातकुलशीला होने के कारण उसकी क्षोभपूर्ण स्थिति, सीता के वीर्यशुल्का घोषित करने की बात, मिथिला पहुंचकर शस्त्रागार में स्थित शिव-धनुष को देखने की विश्वामित्र की इच्छा, विश्वामित्र द्वारा शिव-धनुष के रहस्य को समझ लेना, राम को उस रहस्य से परिचित कराना, शिव-धनुष भंग, राम-सीता का विवाह; राम ,लक्ष्मण ,सीता का अयोध्या की ओर प्रस्थान, रास्ते में भार्गव परशुराम से संघर्ष, परशुराम का तेजोवध आदि घट्नाओं को प्रस्तुत उपन्यास में डॉ. नरेन्द्र कोहली ने उपन्यस्त किया है।

डॉ. कोहली ने 'दीक्षा' तथा अन्य उपन्यासों में मूल कथा तो वाल्मीकि रामायण से ही ली है, किन्तु अनेक स्थानों पर लेखक ने अनेक मिथकीय घट्नाओं का अर्थघटन आधुनिक, वैज्ञानिक, तार्किक

दृष्टि से किया है। वाल्मीकि रामायण में राम की कथा राम-जन्म और अयोध्या से प्रारंभ होती है, किन्तु 'दीक्षा' में रामायण की यह कथा विश्वामित्र के सिद्धाश्रम से शुरु होती है। शिव-धनुष भंग वाले प्रसंग को भी किंचित परिवर्तन के साथ लिया है। सीता को वीर्यशुल्का घोषित करने के उपरान्त क्षत्रिय राजकुमार एवं राजा अलग-अलग समय पर आते हैं, एक साथ स्वयंवर के रूप में नहीं।[5] शिव-धनुष को एक ऐसे दिव्यास्त्र के रूप में बताया है जो भविष्य के लिए खतरा पैदा कर सकता है, उसकी प्रचालन-विधि विश्वामित्र को ही ज्ञात थी, जनक भी उस विषय में अज्ञात थे, अंतः ऋषि चाहते हैं कि इसको नष्ट कर दिया जाय। अतः वह राम को उस प्रचालन-विधि के संदर्भ में बता देते हैं।[6] यहां विवाह भी केवल राम-सिता का ही होता है। सीता की अन्य बहनों के लक्ष्मण, भरत आदि के साथ के विवाह की बात को लेखक ने खारिज कर दिया है, यह कहते हुए कि मूल रामायण में इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। यथा—"मुझे सारी वाल्मीकीय रामायण में उर्मिला कहीं दिखी ही नहीं, अतः मैंने लक्ष्मण को (वन-गमन तक) अविवाहित माना है। राम तथा लक्ष्मण का समवयस्क होना भी अनुकूल नहीं जंचा। अतः लक्ष्मण को छोटा बताया और दशरथ के पुत्रेष्ठि यज्ञ को राजाओं के झूठे इतिहास-लेखन की रूढ़ि ही माना।[7]

परंतु डॉ.विश्वम्भरनाथ अवस्थी ने अपने 'राम-कथा : भक्ति और दर्शन' नामक ग्रन्थ में वाल्मीकि रामायण का हवाला देते हुए "सीताकी चार बहनों का श्रीराम आदि चार भाइयों से विवाह" होने की बात का समर्थन दिया है।[8] दूसरे गुरुवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'काव्येर उपेक्षिता' निबंध में उर्मिला को उपेक्षिता क्यों बताया है? यह सवाल भी उठ सकता है। अतः इस प्रकार के कुछ परिवर्तन डॉ. कोहली ने किए हैं, जिनके औचित्य का प्रश्न तो विवादास्पद रहेगा ही।

'दीक्षा' उपन्यास में डॉ. कोहली ने गुरु विश्वामित्र की प्रेरणा से राम द्वारा तीन युवतियों का उद्धार करवाया है—आदिवासी युवति वनजा का उद्धार[9], अहल्या का उद्धार,[10] सीता का उद्धार [11]। डॉ. कोहली ने अपने इस उपन्यास में यह बताया है कि सीता के कुल-शील का

पता न होने के कारण किसी क्षत्रिय राजकुमार की ओर से सीता का हाथ नहीं मांगा जाता था, अतः तत्कालीन समाज-व्यवस्था के नियमों के तहत जनक उसे 'वीर्यशुल्का' घोषित करते हैं, क्योंकि अपने पराक्रम का प्रदर्शन करके कोई भी क्षत्रिय राजकुमार उसका वरण कर सकता है।[12]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने गुरु वसिष्ठ और विश्वामित्र की चिंतन-प्रणालियों के अंतर को भी स्पष्ट किया है। वसिष्ठ जहां रूढिवादी , परंपरावादी और सामाजिक प्रगति में बाधक ऐसी जड़ मान्याताओं के पोषक है; वहां विश्वामित्र मानवतावादी और प्रगतिवादी प्रतीत होते हैं। उपन्यास के प्रारंभ में ही वसिष्ठ के प्रति विश्वामित्र का यह कथन द्रष्ट्व्य है—"वसिष्ठ ! आर्य-शुद्धता का प्रतीक ! आर्यत्व को साम्प्रदायिक रूप देने का उपक्रम ! जो आर्य-संस्कृति के प्रसार में सबसे बड़ी बाधा है। वसिष्ठ आर्यों को आर्येतर जातियों के संपर्क में नहीं आने देना चाहता। इसलिए वह आर्य राजाओं को आर्यावर्त से बाहर निकलिने के लिए प्रोत्साहित नहीं करेगा। ब्रहमतेज के गौरव पर जीने वाला वसिष्ठ इन राजाओं को कूप-मंडूक बनाकर छोड़ेगा"।[13]

विश्वामित्र जब राम-लक्ष्मण को लेकर सिद्धाश्रम की ओर जा रहे थे, तब रास्ते में वह राक्षसों के अत्याचारों की बात करते हुए आशंका व्यक्त करते हैं कि दक्षिणावर्त में रावण के शक्तिसंपन्न होने पर आर्यावर्त की बड़ी दयनीय अवस्था होगी। धन तथा पशु-शक्ति पर आधारित शासनतंत्र आरंभ होगा। कन्याओं का उन्मुक्त व्यापार होगा और मदिरा की अबाध धारा बहेगी। राम के यह कहने पर कि तब तो आर्य-सम्राट को उसका विरोध करना चाहिए। इसके प्रत्युतर में विश्वामित्र जो कहते हैं उससे आर्यावर्त की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का भी जायजा मिल जाता है—

"आर्यसम्राट के गुरु के पद पर वसिष्ठ बैठा है, जो मानव मात्र को समान नहीं मानता। वह अन्य जातियों से आर्यों को श्रेष्ठ मानता है, आर्यों से ब्राहमणों को श्रेष्ठ मानता है और पुरुषों को नारियों से श्रेष्ठ मानता है। वह शबरों, किरातों, निषादों, वानरों, ॠक्षों, कोल-भीलों जैसी अनेक आर्येतर जातियों तथा दूर-दूर तक फ़ैले हुए

वसिष्ठ दर्शन को न मानने वाले आर्य ऋषि-मुनियों पर होनेवाले अत्याचारों से पीड़ित नहीं होता। वह आर्य-सम्राटों को आर्यवर्त से बाहर निकलने नहीं देता। फिर आर्य-सम्राटों में भी मतभेद है। जनक और दशरथ साथ मिलकर कभी नहीं लड़ेगे"।[14]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में डॉ. नरेन्द्र कोहली ने प्रकारान्तर से यह भी स्पष्ट कर दिया है कि तत्कालीन ऋषि-मुनियों के समाज में भी भिन्न-भिन्न प्रकार की विचारधारा के ऋषिमुनि थे। जहां वसिष्ठ जैसे ऋषि वर्णाश्रम व्यवस्था, आर्यों की श्रेष्ठ्ता तथा ब्राह्मणों की सर्वोपरिता के कायल थे वहां विश्वामित्र और अगस्त्य जैसे ऋषि-मुनि भी थे जो आर्येतर निम्न जातियों के उत्थान में भी लगे हुए थे और जो जातिगत संकीर्णता में विश्वास नहीं रखते थे। डॉ. कोहली ने यहां इस तथ्य को भी उजागर किया है कि वानर, ऋक्ष, जटायु, गृद्ध आदि पशु-पक्षी न होकर दक्षिण की आदिवासी जातियां थीं जो रावण के अत्याचार से त्रस्त थीं।

प्रस्तुत उपन्यास में डॉ. कोहली सामान्य मनुष्य, राक्षस, ऋषि और अवतारी पुरुष विषयक अपने विचार भी व्यक्त करते हैं— "पुत्र! चिंतक केवल सोचता है। वह जानता है कि क्या उचित है, क्या अनुचित। समाज और देश में क्या होना चाहिए, क्या नहीं होना चाहिए। किन्तु अपने चिंतन को कर्म के रूप में परिणित करना सामान्यत: उसके लिए सम्भव नहीं होता। उसकी कर्म-शक्ति क्षीण हो जाती है। वहां केवल मस्तिष्क रह जाता है। दूसरी और जो न न्याय और औचित्य की बात सोचते है, जो न समाज और राष्ट्र की बात सोचते हैं। वे केवल अपने स्वार्थ के लिए कर्म करते चले जाते हैं। केवल कर्म व्यक्ति को राक्षस बना देता है। न्याय और अन्याय का विचार मनुष्य को ऋषि बना देता है। और पुत्र! जिनमें न्याय-अन्याय का विचार और कर्म दोनों हों, एसे अदभुत लोग संसार में बहुत ही कम होते हैं। जन-सामान्य ऐसे ही लोगों को ईश्वर का अवतार मान लेता है"।[15]

इस दृष्टि से देखा जाए तो प्रस्तुत उपन्यास राम की 'दीक्षा' का उपन्यास है। राम की तैयारी का उपन्यास है। रामायण-माला की

एक कड़ी होते हुए भी यह अपने –आप में एक स्वतंत्र उपन्यास है। डॉ. विवेकीराय ने डॉ. कोहली को एक अप्रतिम कथा-यात्री कहा है और सचमुच में वे इन उपन्यासों के द्वारा सहृदय पाठ्कों को कथायात्रा करवाते हैं। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि रामायण की कथा पर आधृत होते हुए भी अन्य अनेक रामायणों की तरह एक नयी रामायण नहीं है। वस्तुतः यह एक उपन्यास है। उसे हम पौराणिक उपन्यास कह सकते है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक 'दीक्षा' के राम को 'जनवादी राम' कहते हैं।[16] डॉ. पारूकान्त देसाई ने 'दीक्षा' को एक आधुनिक भावबोध-संपन्न उपन्यास की संज्ञा दी है।[17]

(2) अवसर (1976) :

'दीक्षा' उपन्यास की अश्रुतपूर्व सफ़लता से प्रेरित होकर डॉ. कोहली ने रामायण-शृंखला के द्वितीय उपन्यास 'अवसर' का सृजन किया। इन पौराणिक उपन्यासों को दोनों तरफ़ के लोगों ने भरपूर सराहा। जहां दक्षिणपंथी लोगों ने राम के कारण इन उपन्यासों का स्वागत किया, वहां वामपंथी लोगों ने राम के जनवादी स्वरूप के कारण लेखक के कार्य को श्लाध्य समझा। डॉ. कोहली के राम कई मायनों में एक सामंतवादी राम न लगकर जनतांत्रिक राम प्रतीत होते हैं। 'अवसर' उपन्यास का बीजबपन 'दीक्षा' में ही हो गया था। 'दीक्षा' में राम अपने गुरु विश्वामित्र को एक वचन देते है – "मैं आपको वचन देता हूं कि मेरे जीवन का लक्ष्य, राजभोग नहीं, न्याय का पक्ष लेकर लड़ना, अन्याय का विरोध करना, वैयक्तिक स्वार्थों का त्याग, जन-कल्याण के मार्ग में आनेवाली बाधाओं का नाश तथा सबके हित और सुख के लिए अपने जीवन को अर्पित करना होगा। मैं आपको वचन देता हूं मैं स्वयं तपस्वियों, ऋषियों, बुद्धिजीवियों के पास जाऊंगा, जिन्होंने अपने जीवन को सत्य और न्याय के चिंतन में, साधना में, ज्ञान और विज्ञान की वृद्धि में खपा दिया है। जो अपनी रक्षा का वचन लेने के लिए मुझ तक नहीं आ सकते, मैं उन तक पहुंचूंगा और अन्याय का, उसकी शाखा-प्रशाखाओं के साथ समूल नाश करूंगा"।[18] 'अवसर' उपन्यास में राम को अपना यह वचन निभानेका सुंदर 'अवसर' प्राप्त हो जाता है।

'दीक्षा' की भांति 'अवसर' उपन्यास का शीर्षक भी कई-कई दृष्टियों से सार्थक एवं उपयुक्त है। वनगमन से राम-लक्ष्मण को अपने वचन को निभाने का सुवर्ण अवसर प्राप्त होता है, भूमिपुत्री सीता को राम के सहवास का अवसर मिल जाता है (अयोध्या में राजकाज में लीन राम को इतना समय कहां मिलता?), राम-लक्ष्मण-सीता तीनों को जन-साधारण के बीच जाकर उनकी समस्याओं को समझने का और उनकी सेवा का अवसर मिल जाता है, जन-साधारण तथा ऋषियों को भी राम-लक्ष्मण के साथ रहकर उनके सहयोग और उत्साह से राक्षसी प्रवृत्तियों के खिलाफ़ लड़ने का 'अवसर' मिल जाता है। फ़लत: वनगमन के प्रस्ताव से राम को प्रसन्न्ता ही होती है और इसी लिए लक्ष्मण एवं सीता भी खुशी-खुशी उनके साथ हो लेते हैं।

'अवसर' में वाल्मीकि-रामायण की अयोध्याकांड और अरण्यकांड की कथा कुछेक परिवर्तनों के साथ उपन्यस्त की गई है। यहां पर लेखक ने राम, लक्ष्मण, सीता, कैकेयी, कौशल्या, सुमित्रा आदि सभी पात्रों को मानवीय धरातल पर रखा है। राम का 'परब्रह्म' वाला रूप भी यहां तिरोहित हो गया है, तथापि लेखक ने राम के मर्यादा पुरुषोत्तम वाले रूप को न्याय दिया। दूसरे शब्दों में कहें तो राम का चरित्र यहां 'Larger than life' तो है, 'Larger than imagination' नहीं है, जो पौराणिक उपन्यास के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

उपन्यास का प्रारंभ वृद्ध दशरथ के मोह, भय, संक्षय-ग्रस्तता, उद्विग्नता आदि से होता है। दशरथ को अपने चारों तरफ़ षड्यंत्र ही षड्यंत्र नजर आते हैं। परिणामत: त्याग-भावना से नहीं, अपितु भय और असहायता के कारण वह राम का राज्याभिषेक शीघ्रातिशीघ्र संपन्न कराना चाहते है और इसी इसीलिए कैकेयी को भी अंधेरे में रखा जाता है, किन्तु इसका बिलकुल विपरित परिणाम सामने आता है। इधर स्वयं कैकेयी में कुछ परिवर्तन आ रहा था। उसके मन की घृणा और वितृष्णा दूर हो रही थी। राम के राज्याभिषेक से वह प्रसन्न थी। अत: यह समाचार लाने वाली मंथरा को वह उत्साह के अतिरेक में बहुमूल्य माला दे देती है। पर मंथरा

वह माला उसके मुंह पर दे मारती है। कैकेयी को ज्ञात होता है कि यह सारा कार्यक्रम एक योजना के तहत हो रहा है और दशरथ को कैकेयी के प्रति अविश्वास है, तब प्रतिहिंसा की जो ज्वाला भभूकती है, उसके कारण वह सब हो जाता है जो रामायण में वर्णित है।[19] राम का राज्याभिषेक धरा का धरा रह जाता है और उनको वनगमन करना पड़ता है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में राम-वनगमन से लेकर उनकी चित्रकूट यात्रा तक के विवरण को दिया गया है।

उपन्यास की प्रमुख घट्नाओं में राम का वनगमन, वनगमन से पूर्व कैकेयी सहित सभी माताओं को मिलना, कैकेयी द्वारा राम को अपने मन की बातों को बताना, राम द्वारा माताओं की सुरक्षा की व्यवस्था करवाना, सीता-लक्ष्मण का परिहास शुंगवेरपुर में निषादराज द्वारा राम का स्वागत, निषादराज की पत्नी के साथ सीता का घुल-मिल जाना, राम का ऋषि भारद्वाज से मिलकर स्थिति का जायजा लेना, मुखर (एक काल्पनिक पात्र) की दर्द भरी कहानी कि किस तरह राक्षसों द्वारा उसके सभी परिवारजनों की हत्या हुई थी, चित्रकूट में मंदाकिनी के संगम पर आश्रम की स्थापना, राम-लक्ष्मण द्वारा शस्त्र प्रशिक्षण की तैयारियां, सर्वप्रथम सीता और मुखर को प्रशिक्षित करना, राक्षसों के साथी तुंभरण का आतंक, तुंभरण के वध से लोगों का उत्साहित होना, कालकाचार्य के ब्रह्मचारियों पर राक्षसों के अत्याचार, कालकाचार्य का आश्रम को अन्यत्र ले जाना, राम द्वारा जातिवाद को मिटाने की घोषणा, दशरथ की मृत्यु के समाचार, भरत तथा माताओं का आना, राम के न मानने पर निराश होकर लौट जाना, सीता के साथ दुर्व्यवहार के कारण इन्द्र-पुत्र जयन्त को राम द्वारा एकाक्ष कर देना, राक्षसों के अत्याचार का बढना, उनके द्वारा संकल्पमुनि के पैरों को काट देना जैसी घट्नाओं का उल्लेख यहां हुआ है।

लेखक ने पुत्रेष्टि-यज्ञ की बात को नकार दिया है। यहां लक्ष्मण राम से चार-पांच साल छोटे हैं। दूसरे लक्ष्मण अविवाहित है। यहां केवल 'नुपूर' को पहचाननेवाले मर्यादावादी लक्ष्मण नहीं है, सीता और लक्ष्मण में प्राय: हास-परिहास चलते रहते हैं। [20] सीता का

चित्रण भी एक सुशिक्षित नारी के रूप में हुआ है। राम के साथ वह परिवार-नियोजन की बात भी करती हैं।[21] विश्वामित्र भी यहां किसी विश्वविद्यालय के कुलपति और शिक्षाशास्त्रि तथा चिंतक के रूप में हमारे सामने आते हैं। राज्याश्रय पर बात करते हुए एक स्थान पर विश्वामित्र राम को कहते हैं—"पुत्र! अन्याय वहीं होता है, जहां सत्ता और धन होता है। कला जब सत्ता और धन के आश्रय में चली जाती है, तो अपने मूल धर्म से च्यूत हो जाती हैं। ... कलाकार विद्रोही होता है और शासन विद्रोह नहीं चाहता। कलाकार और शासन सहमत हो तो कलाकार को ईमानदार न समझो। शासन द्वारा पूजे जानेवाले कलाकारों में वास्तविक कलाकार बिरले ही होते हैं। अधिकांश भांड-मात्र होते है"। [22]

प्रस्तुत उपन्यास की सीता में हमें आधुनिक नारी-विमर्श स्पष्ट्तया दृष्टिगोचर होता है। एक स्थान पर सीता राम से कहती है—" इस परिवार का ही नहीं, सारे समाज का ढांचा ही कुछ ऐसा है, कि नारी कहीं शोभा की वस्तु है, कहीं भोग की। कहीं वह अत्यन्त शोषित है, कहीं परजीवी। अमरवेल होकर रह गई है नारी, जो अपने पति के माध्यम से समाज का रस खींचती है। समाज से उसका सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है। घर की व्यवस्था में तो फ़िर भी उसका स्थान है, किन्तु सामाजिक उत्पादन में एकदम निष्प्रयोजन वस्तु है। निर्धन किसान की पत्नी उसके साथ खेत पर जाकर उसका हाथ बंटाती है, श्रमिक की पत्नी पति के साथ या स्वतंत्र रूप से श्रम करती है; किन्तु धनिक वर्ग की स्त्रियां मात्र जौकें हैं"। [23]

प्रस्तुत उपन्यास में डॉ. कोहली ने राक्षस को कोई जाति-विशेष न मानते हुए उन तमाम लोगों को राक्षस माना है जो असहाय, निर्बल, निरीह लोगों पर अत्याचार करते हैं और अन्याय द्वारा शोषण करते हुए स्वयं शक्तिशाली एवं संपत्तिवान होते हैं।[24] किन्तु आचार्य चतुरसेन शास्त्री का अभिमत डॉ. कोहली से भिन्न है। उनकी दृष्टि अधिक ऐतिहासिक एवं तर्कसंगत है। उन्होंने अपने उपन्यास 'वयं रक्षाम:' में राक्षस को एक जाति-विशेष ही बताया है। उनकी अपनी एक संस्कृति थी। वस्तुतः राम-रावण युद्ध रक्ष-संस्कृति

और आर्य-संस्कृति के बीच का संघर्ष है। दूसरे राक्षस याने सब बुरे ही बुरे और आर्य याने सब अच्छे ही अच्छे उस 'मिथ' को भी तोड़ा है। उन्होंने दोनों जातियों और संस्कृतियों के गुणों-अवगुणों पर सम्यक दृष्टि से विचार किया है।

डॉ. कोहली ने प्रस्तुत उपन्यास में कैकेयी के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उसके साथ भी न्याय किया है। कैकेयी राम से स्पष्ट कहती है—"मैं इस घर में अपने अनुराग का अनुसरण करती हुई नहीं आई थी। मैं पराजित राजा की और से विजयी सम्राट को संधि के लिए दी गई एक भेंट थीं। सम्राट औरे मेरे वय का भेद आज भी स्पष्ट है। मैं इस पुरुष को पति मान पत्नि की मर्यादा निभाती आई हूं, पर मेरे हृदय से उनके लिए स्नेह का उत्स कभी नहीं फूटा। ये मेरी मांग का सिंदूर तो हुए, अनुराग का सिंदूर कभी नहीं हो पाये"।[25]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में हमें ऐसे कई प्रसंग मिलते है जिनसे हमारी साम्प्रत समस्याओं पर भी प्रकाश पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास की सीता में नारीत्व की सहजता और स्वाभाविकता का चित्रण लेखक ने किया है। सीता राम के साथ अनेक सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक तथा वैश्विक समस्याओं पर विचार-विमर्श करती है। यहां सीता कोमल और अबला नहीं है। राम उसे शस्त्र चलाना सीखाते है, नाव चलाना सीखाते है और युद्धाभ्यास तथा संघर्ष प्रतिरोध के लिए तैयार करते है। सीता भी कोल, भील, किरात, वानर, ऋक्ष आदि जातियों की स्त्रियों को प्रशिक्षित करती है। संक्षेप में 'अवसर' में राम और सीता क्रमश: जन-नायक और जन-नायिका के रूप में उभरकर आते हैं।

(3) संघर्ष की ओर (1977) :

'संघर्ष की और' डॉ. कोहली का रामायण-शृंखला का तीसरा उपन्यास है। यद्यपि राम-रावण के संघर्ष का प्रारंभ तो सिद्धाश्रम में ताड़का वध के साथ ही हो गया था, किन्तु राम के वनगमन कारण उसमें क्षिप्रता आ जाती है। उसके बाद वे निरंतर संघर्षपूर्ण स्थितियों

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

की ओर ही बढ़ते चले जाते हैं। प्रथम दो उपन्यासों की तुलना में प्रस्तुत उपन्यास का आकार कुछ बढ़ गया है, फ़लतः उसे दो खण्डों में विभक्त किया है जो क्रमशः 208 तथा 149 पृष्ठों में उपन्यस्त है। प्रथम खण्ड की कथा राम के चित्रकूट प्रस्थान से आरंभ होकर अगस्त्य मुनि के आश्रम तक चलती है। इसमें मूल आधिकारिक कथा के साथ –साथ मुनि धर्मभृत्य द्वारा प्रणीत अगस्त्य-कथा भी चलती है। द्वितीय खण्ड में इस शृंखला के चतुर्थ उपन्यास 'युद्ध' की पृष्ठ्भूमि का निर्माण होता है। उक्त तीनों उपन्यास अब 'अभ्युदय खण्ड – 1' में संपादित हुए हैं। 'संघर्ष की ओर' उपन्यास वाल्मीकि रामायण के 'अरण्यकांड' की कथा पर आधारित है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने रामाकथा के साथ-साथ अपने समय की सामाजिक- राजनीतिक स्थितियों का भी बड़ा ही सटीक एवं सार्थक चित्रण किया है। इसमें एक स्थान पर राक्षसों द्वारा खाये गये तपस्वियों और मनुष्यों की हड्डियों के ढेर का बड़ा ही लोमहर्षक एवं हृदय-विदारक चित्रण लेखक ने किया है। राक्षसों की इन आतंकवादी प्रवृतियों के कारण ही ऋषि शरभंग अपना आत्मदान करते हैं। यहां पर जहां एक तरफ़ राम-लक्ष्मण-सीता को अपने आश्रम में ठ्हराने से डरने वाले मुनि सुतिष्ण है, तो दूसरी तरफ़ अप्सराओं के साथ विहार करने वाले मुनि मांडकर्णि है जो पंचासर में शराब और सुंदरी में आकंठ डूबे हुए है। मांडकर्णि शुरू से ऐसे नहीं थे, वस्तुतः वह श्रमिकों तथा आदिम जातियों का जो राक्षसों द्वारा शोषण हो रहा था, उसका विरोध करने के लिए उन्हें संगठित कर रहे थे। अतः राक्षस मुनि मांडकर्णि को ही सुरा-सुंदरी के चक्कर में डाल देते हैं। राक्षस प्रवृत्ति के लोग जन-सेवकों को भी कैसे राक्षस बना देते है, उसका अच्छा उदाहरण मुनि मांडकर्णि का है।

यहां पर एक दूसरा महत्वपूर्ण एवं चौंकानेवाला तथ्य हमारे सामने आता है कि जिन ऋषि शरभंग के आश्रम के पास मानव-हड्डियों का ढेर है, वहां इन्द्र का भी आना-जाना है। तात्पर्य यह कि इन्द्र इन राक्षसों की प्रवृत्तियों से अनभिज्ञ नहीं है, बल्कि कहा जा सकता है इन पैशाचिक प्रवृत्तियों में इन्द्र का भी हाथ है। बिलकुल

इसी तरह अमरिका शांति-शांति का ढंढेरा पिटते हुए आतंकवादी देशों और संगठनों को हथियार मुहैया करा रहा है।

प्रस्तुत घटना से लेखक के इस विचार को समर्थन मिलता है कि राक्षस कोई जाति नहीं, अपितु एक प्रवृत्ति-विशेष है और किसी भी जाति का व्यक्ति, चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो, राक्षस हो सकता है। प्राय: हमारी सभी रामायणों में रावण को भी ब्राह्मण ही बताया है। डॉ. भगवानसिंह के उपन्यास 'अपने अपने राम' में राम बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से वसिष्ठ को कहते हैं—"जब आप रावण और वृत्र की बात कर रहे थे तब मैं सोच रहा था, सभी राक्षस ब्राह्मण ही क्यों होते हैं? क्या इसका एक कारण यह नहीं है कि जिन अपराधों के लिए समाज के अन्य लोगों को दंड मिलता है उन्हीं के लिए ब्राह्मण को दंडमुक्ति मिली हुई है"?[26]

इस संदर्भ में डॉ. नरेन्द्र कोहली लिखते है—"मैंने यहां पिछड़ी हुई अविकसित मानवता के विरुद्ध महाशक्तियों के षडयंत्र की कल्पना की है। इस अविकसित मानवता के पक्ष में खड़े हैं शरभंग और अगस्त्य। राम इसी पक्ष की सहायता के लिए वहां आते हैं। दस वर्षों तक राम मानवता के शत्रुओं का नाश करते हैं और उस संपूर्ण क्षेत्र को भयमुक्त कर अगस्त्य के आदेश से पंचवटी में आकर बस जाते हैं। पंचवटी के सामने गोदावरी के उस पार शूर्पणखा का सैनिक स्कन्धावार है। यहां से राक्षसों के साथ राम द्वारा संगठित लोगों का संघर्ष आरंभ होता है। शूर्पणखा को मैने प्रौढ़ वय की, धन-सत्ता-सेना संपन्न कामुक स्त्री के रूप में चित्रित किया है। जटायु गृध्र जाति के गुरिल्ला योद्धा हैं तथा विभिन्न जन-संगठन राम की सेना है"।[27]

प्रस्तुत उपन्यास की कथा जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड की कथा ऋषि शरभंग के आत्मदाह से प्रारंभ होकर राम-सीता के अगस्त्य-मिलन तक जाती है। खण्ड के अंत में राम ऋषि के आदेश से पंचवटी के लिए प्रस्थान करते हैं। इस खंड की प्रमुख घटनाओं में निम्न-लिखित का उल्लेख कर सकते हैं—

ऋषि शरभंग का आत्मदाह, इस संदर्भ में मुनि ज्ञानश्रेष्ठ का मौन और मुनि सुतिष्ण की कायरतापूर्ण तटस्थता, अस्थि-पिंजरों के ढेर का रहस्येदघाटन, सीता को उठा ले जाने का वराध नामक राक्षस का प्रयत्न, फ़लतः वराध का वध, मुनि धर्मभृत्य की अगस्त्य कथा, यहां से मूल कथा के समानान्तर अगस्त्य-कथा का आरंभ, मूल कथा में अनिंदय और सुधा (पति-पत्नि) द्वारा वहां के स्थानिक लोगों, श्रमिकों, खान-कर्मियों के राक्षसों द्वारा हो रहे शोषण व अत्याचार की कथा, मद्यपान की समस्या, मुनि मांडकर्णि की कथा; राम-लक्ष्मण-सीता के द्वारा जन-जागरण का कार्य, कुटिर-निर्माण योजना, जनवाहिनी का निर्माण, सामूहिक खेती की विभावना, मुनि आनंदसागर के आश्रम की रक्षा, अग्निमित्र और उग्राग्नि (राक्षसों के सहयोगी) के अत्याचारों से खान-कर्मियों की मुक्ति, कृषकों का शोषण करनेवाले भूधर का वध, जन-साधारण में नयी चेतना की लहर, आश्रमवाहिनियों एवं ग्रामवाहिनियों की स्थापना, राक्षसों के निरंतर हमले, राक्षसों में से ओगरु नामक एक व्यक्ति का पकड़ा जाना पर उसका राक्षस न होना, उसका कर्कश नामक पुरोहित का दास होना, कर्कश की धूर्त-विद्या का पर्दाफ़ाश, ओगरु द्वारा कर्कश की हत्या; ओगरु के गांव के लोगों का भी राम की और आकर्षित होना, जन-जागरण की बातों से मुनि सुतिक्ष्ण के विश्वास में वृद्धि होना और उनके द्वारा रामको आमंत्रित करना, राम-लक्ष्मण-सीता सुतिक्ष्ण के आश्रम में आने से आसपास के जनसमूह का उमड़ पड़ना और उनके द्वारा भी संगठन का निर्माण करना जैसी घटनाएं यहां उपन्यस्त हुई है।

इस मूल कथा के साथ मुनि धर्मभृत्य द्वारा लिखित अगस्त्य-कथा भी चलती है। अगस्त्य-कथा के मुख्य प्रसंगों में विन्ध्य के उत्तर में लूटपाट और आगजनी की घटनाएं, आर्यों का वानर-जाति के लोगों पर शक करना, ठीक इसी प्रकार की घट्नाएं विन्ध्य की दक्षिण में वानरों के गांवों में भी होना, आर्यों द्वारा वानरों पर आक्रमण की तैयारी, अगस्त्य का आर्य-प्रमुख प्रवीर को समझाना कि जब तक वह न लौटे वानरों पर आक्रमण न किया जाय,

अगस्त्य का विन्ध्य के दक्षिण में जाकर वानरों से मिलना, भेद का स्पष्ट होना कि ये काम राक्षस ही कर रहे थे, अगस्त्य का वानर-यूथों को समझाना, शतालू और साझा (वानर पति-पत्नी) की कहानी, उनकी बेटी प्रभा का इलाज करना, भूत-प्रेत विषयक अंधविश्वासों को दूर करना आदि घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है।

मुनि धर्मभृत्य की अगस्त्य-कथा में अनेक अध्यायों तक मुर्तू नामक वानर-शिशु की कथा आती है। अन्य अनेक वानर-शिशुओं के साथ राक्षस मुर्तू का भी अपहरण करके उसे लंका ले जाते हैं। परंतु अपनी योग्यता और बुद्धि के कारण मुर्तू लंका में उच्च पद को प्राप्त करता है। उसके द्वारा बड़े बड़े जलपोतों का निर्माण होता था। कई वर्षों बाद मुर्तू अपने गांव लौटता है। गांव की बदहाली और जहालत से मुर्तू दुःखी रहता है। वह वापस लौट जाना चाहता है। परंतु उसके पिता उसे ऋषि अगस्त्य के पास ले जाते हैं। अगस्त्य की बातों से प्रेरित होकर मुर्तू वहां रुक जाने के लिए तैयार होता है और अपने जनपद के उद्धार की योजना तैयार करता है। इस संदर्भ में वह ग्रामप्रमुख, यूथपति तथा पुरोहित को मिलता है। उसकी बातों से पुरोहित को अपने न्यस्त हितों पर खतरा मंडराता हुआ नजर आता है, फ़लतः वह उसे अपमानित व प्रताडित करता है। मुर्तू समझ जाता है कि गांव की गरीबी और जड़ता का मूल पुरोहित ही है। अंततः निराश होकर वह लौट जाता है। कथा के इस भाग में लेखक ने बताया है कि किस प्रकार अगस्त्य-लोपामुद्रा वानर, ऋक्ष, गरुड़, गृध्र आदि जातियों में जागृति लाने का कार्य करते हैं।

इसके बाद की अगस्त्य-कथा मुनि सुतिक्ष्ण बताते हैं जिसमें अगस्त्य द्वारा कालकेयों को पराजित करना, वानर-जाति का समुद्र-विषयक अज्ञान दूर करना, उनकी अंध-मान्यताओं को भगाना, उन्हें नौकाओं और जलपोतों के निर्माण के लिए तैयार करना, वातापि और इल्बल जैसे दुष्टों का संहार करना और इस तरह वानर जाति के लोगों में आत्मबल की वृद्धि करना जैसी घटनाएं वर्णित हैं। यहां लेखक ने अगस्त्य-विषयक दो मिथक कथाओं का निरसन भी किया

है। वे मिथक हैं—अगस्त्य द्वारा विन्ध्य को झुकाना और समुद्र को पी जाना।

सुतिक्ष्ण के आश्रम से राम, सीता और लक्ष्मण ऋषि अग्निजिह्वा के आश्रम में जाते हैं और वहां से अंततः वे अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुंचते हैं। यह बिन्दु रामकथा और अगस्त्य-कथा का संगम-स्थान है। राम और अगस्त्य के बीच गंभीर विचार-विमर्श, ऋषि द्वारा राम को भविष्यत् संकटों से अवगत कराना, सीता-लोपामुद्रा के बीच विचार-विमर्श, लोपामुद्रा द्वारा संचालित चिकित्सालय को देखना, युद्ध में शैल्य-चिकित्सा का महत्व, शतालू की कन्या का एक प्रमुख वैद्य एवं शैल्य-चिकित्सक के रूप में उभरना, उसका सेनानायक सिंहनाद से विवाह जैसी घटनाएं यहां निरूपित हुई हैं। यहां एक तरह से अगस्त्य अपना राक्षस-विरोधी मिशन राम-लक्ष्मण और सीता को सौंप देते है, इतना ही नहीं कुछ दिव्यास्त्र और देवास्त्र भी प्रदान करते हैं और उस प्रकार के दिव्यास्त्रों निर्माण की वैज्ञानिक पद्धति भी सिखाते हैं।

उपन्यास का द्वितीय खंड आठ अध्यायों में विभक्त है। ऋषि अगस्त्य की प्रेरणा से राम, सीता और लक्ष्मण पंचवटी में अपने आश्रम की स्थापना करते हैं। यहां उस जटायु से उनकी मुलाकात होती है जिसने शंबर-युद्ध में दशरथ का साथ दिया था। उससे उन्हें रावण-भगिनी शूर्पणखा के अत्याचारों का ब्यौरा प्राप्त होता है। शूर्पणखा के इस स्वभाव का भी लेखक ने मनोवैज्ञानिक विवरण दिया है। शूर्पणखा के प्रेमी व पति काकलेय विद्युतजिह्व का वध रावण ने किया था, अतः उसकी अतृप्त प्रेम-वासना भीषण स्वरूप धारण करती है। वह किसी भी सुखी दंपति को देखकर ईर्ष्या से सुलग उठती है। अतृप्त काम-वासना के कारण उसका एक विपुल-वासनावती स्त्री (Nympho) में रूपान्तरण हो जाता है।

इस खण्ड की घटनाएं संक्षेप में इस प्रकार हैं—राम के पौरुषेय सौन्दर्य से शूर्पणखा का आकर्षित होना, राम को अपने सौन्दर्य से रीझाने के लिए लंका से सौन्दर्य-कर्मियों (Beauticians) को बुलाना, राम-शूर्पणखा संवाद, व्यंग्य में लक्ष्मण की और इशारा,

लक्ष्मण को मोहित करने के लिए पुन: तैयारी के साथ आना, सीता का परिहास, लक्ष्मण-शूर्पणखा संवाद, सीता को देखकर शूर्पणखा का उग्र रूप धारण करना, लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के नाक और कान को शस्त्र-चिह्नित कर देना, उपेक्षित और अपमानित शूर्पणखा का अपने अंगरक्षकों लेकर धावा बोलना, उसमें शूर्पणखा की पराजय, अत: दूसरे दिन खर-दूषण-त्रिशिरा को चौदह हजार की सेना के साथ भेजना, उसमें खर-दूषण-त्रिशिरा का वध, शुर्पणखा का लंका पहुंचकर प्रतिशोध के लिए रावण को उकसाना, सीता के अद्वितीय सौन्दर्य की बात छेड़कर रावण में लोलुपता के भावों को जगाना, मारीच की सहायता से रावण द्वारा सीता को अपहृत करना, उस संघर्ष में मुखर का खेत रहना और जटायु का बुरी तरह से घायल हो जाना, रावण-मंदोदरी संवाद, इन्द्रजीत के कारण मंदोदरी के सामर्थ्य का बढ़ना, मंदोदरी के ही कहने पर सीता को एक वर्ष की अवधि तक अशोकवाटिका में ठहराने के लिए रावण का तैयार हो जाना, रावण-सीता संवाद, सीता द्वारा रावण की भर्त्सना आदि-आदि।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में राम, लक्ष्मण और सीता शनै: शनै: दक्षिणावर्त के लोगों को राक्षसों के खिलाफ़ आंदोलन के लिए तैयार करते हैं। स्थान-स्थान पर जनवाहिनियां और मुक्ति-वाहिनियां संगठित होती हैं। राम और अगस्त्य दक्षिण की आदिम जातियों में जागृति लाने का कार्य करते हैं। उनके अंध-विश्वासों को मार भगाते है और उन्हें व्यसनमुक्त करने के प्रयत्न करते हैं। इन राक्षस-विरोधी प्रवृत्तियों के कारण राम-रावण संघर्ष की भूमिका तैयार होती है, जिसमें शूर्पणखा-प्रसंग से और क्षिप्रता आ जाती है। इस उपन्यास में अगस्त्य की कथा रामकथा के समानान्तर चलती है। अगस्त्य जिस कार्य की शुरुआत करते हैं उसे अंजाम देने का कार्य राम को करना है यह भी यहां संकेतित हो जाता है। मुर्तू की कहानी में हमें आधुनिक 'ब्रेइन-ड्रेनेज' की कहानी दृष्टिगत होती है। मुनि मांडकर्णि की कहानी भी संक्षेप में बहुत कुछ कह जाती है।

(4) युद्ध (1979) :

'युद्ध' रामायण शृंखला का चौथा उपन्यास है। इस शृंखला का यह सबसे बड़ा उपन्यास है, जो 616 पृष्ठों में उपन्यस्त हुआ है। इस बृहदाकार उपन्यास को महाकाव्यात्मक उपन्यास (Epic Novel) कह सकते हैं। न केवल आकार, बल्कि उसमें निरूपित चेतना भी उसके अनुकूल है। जहां 'संघर्ष की ओर' रामायण के 'अरण्यकांड' पर आधारित था, वहां प्रस्तुत उपन्यास रामायण के 'किष्किंधाकांड', 'सुंदरकांड' तथा 'लंकाकांड' की कथा पर आधृत है। जहां इस शृंखला के अन्य तीन उपन्यास 'अभ्युदय' खण्ड-1' में संकलित हैं, वहां प्रस्तुत उपन्यास अकेला 'अभ्युदय खण्ड-2' में संकलित है। और इसलिए ही प्रस्तुत उपन्यास को दो खण्डों में विभक्त किया है— 'युद्ध-1' और 'युद्ध-2'। 'युद्ध-1' की कथा सीताहरण से लेकर सीतान्वेषण के अंतिम चरण तक की कथा है। यहां रामकथा तीन स्तरों पर चलती है—सीताहरण के उपरांत सीतान्वेषण की कथा, बालि-सुग्रीव की कथा तथा रावण के महामहालय और अशोकवाटिका की गतिविधियों की कथा। 'युद्ध-2' में हनुमान के लंका-प्रवेश से लेकर रावण के वध तक की घट्नाओं को उपन्यस्त किया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में डॉ. नरेन्द्र कोहली ने स्वयं लिखा है—"मेरे लिए यह प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण था कि राम, सुग्रीव तथा विभीषण की मैत्री का आधार क्या था? राम ने बाली से मित्रता क्यों नहीं की? सुग्रीव और विभीषण ने अपने भाइयों के विरुद्ध राम का साथ क्यों दिया? अंगद और तारा को सुग्रीव और राम के विरुद्ध शिकायत क्यों नहीं थी? तार (तारा का भाई) अपने बहनोई वाली को छोड़कर सुग्रीव के साथ वनों में क्यों भटक रहा था? और सबसे बड़ी बात—ब्रह्मा के प्रपौत्र, शिव और दुर्गा के भक्त और कृपापात्र, इन्द्र और कुबेर के विजेता रावण और अपने समय के सबसे सुदृढ़ सुसंगठित साम्राज्य की प्रशिक्षित सेनाओं के विरुद्ध राम और उनकी वानर भालुओं की जन-सेना विजयी कैसे हुई? इन तथा इन्हीं से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों का समाधान ढूंढने का प्रयत्न मैंने अपने इस उपन्यास के दोनों भागों में किया है"।[28]

'युद्ध-1' का प्रारंभ वाली-सुग्रीव की कथा से होता है। ये दोनों भाई किष्किंधानगरी के शासक थे। वाली अत्यन्त शक्तिशाली था। दुंदुभि नामक महाशक्तिशाली भैंसे को वह मार गिराता है।[29] बालि रावण से भी अधिक शक्तिशाली समझा जाता था। अतः रावण अपने साले मायावी (मयदानव के पुत्र) को बालि के पास भेज देता है जिससे सुरा-सुन्दरी में लिप्त रहने के कारण उसकी शक्ति क्षीण हो जाय। मायावी के कारण बालि अलका नामक एक सुंदरी के संपर्क में आता है। बालि उसे बेतरहा प्यार करता है। वस्तुतः अलका मायावी की प्रेमिका है और मायावी के इशारे पर ही बालि से प्रेम का नाटक करती है। एक दिन बालि मायावी को अलका के साथ देख लेता है, अतः वह उसको मारने के लिए उसके पीछे भागता है। मायावी मतंगवन में चला जाता है और लम्बे समय तक बालि के हाथ में नहीं आता है। इधर बालि की अनुपरिस्थिति में सुग्रीव सत्ता के सूत्रों को संभालता है। बालि मायावी और अलका के इशारों पर नाचता था, अंतः राज्य के बहुत से सभासद एवं मंत्रि बालि के राज्य से प्रसन्न नहीं थे। अन्याय, अत्याचार और शोषण का बोलबाला था। सुग्रीव के शासन में पुनः सुराज्य की स्थापना होती है। किन्तु जब बालि मायावी के वध के उपरान्त लौटता है तब सत्ता के सूत्र पुनः बालि के पास चले जाते हैं। बालि के चाटूकार मंत्रि बालि को सुग्रीव के खिलाफ़ भड़काते हैं, परिणाम-स्वरूप बालि और सुग्रीव के बीच वैमनस्य की खाई बढ़ती ही जाती है। एक समय ऐसा आता है कि बालि सुग्रीव के वध के लिए तैयार हो जाता है, परंतु सुग्रीव के एक विश्वसनीय साथी शिल्पी को उसकी भनक लग जाती है, अतः उसके प्रयत्नों से सुग्रीव मतंगवन में भाग जानें में सफ़ल हो जाता है। बाद में सुग्रीव के पक्षकार ऐसे नल, नील, तार, हनुमान आदि भी सुग्रीव को मतंगवन में जाकर मिलते हैं। बालि सुग्रीव की पत्नी रुमा पर न केवल अत्याचार व बलात्कार करता है, बल्कि उसे अपनी पत्नी बनाकर रखता है।[30]

'युद्ध-1' के प्रथम खण्ड की दूसरी कथा सीताहरण के बाद की है। उसमें राम-लक्ष्मण अपने कुछ साथियों के साथ सीता को ढूंढ़ते

हुए मतंगवन तक जा पहुंचते हैं। जटायु मरने से पहले राम को सूचित कर देता है कि रावण ने सीता का हरण कर लिया है। मतंगवन में उनकी मुलाकात हनुमान के प्रयत्नों से गुप्तवास कर रहे सुग्रीव से करवायी जाती है। [31] 'युद्ध-1' के प्रथम खण्ड की तीसरी समानान्तर कथा लंका की है। अपहृत्य सीता को अशोकवाटिका में रखा जाता है। सीता शस्त्र-प्राप्ति का प्रयत्न करती है, परंतु असफ़ल रहती है। शूर्पणखा को रावण अश्मद्वीप भेज देता है। शूर्पणखा अपनी त्रिजटा नामक दासी को सीता की सेवा में रखती है। त्रिजटा का व्यवहार सीता के प्रति बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण है, क्योंकि शूर्पणखा नहीं चाहती थी कि सीता आत्महत्या कर ले। शूर्पणखा के अन्तर्मन में कहीं यह बात थी कि सीता को छुड़ाने राम-लक्ष्मण आयेंगे और तब फ़िर वह उनसे मिलने का कोई रास्ता निकाल लेगी। त्रिजटा भी सोचती है कि यदि सीता मान जाती है तो वह पट्टमहिषी बनेंगी और तब उसका यह व्यवहार उसके अपने हित में रहेगा।

सीताहरण के पश्चात् विभीषण की स्थिति और दयनीय व चिंतनीय हो जाती है। राजसभा में उसे निरंतर अपमानित होना पड़ता है। कुंभकर्ण की निद्रा का कारण भी लेखक ने यहां विश्लेषित किया है। कुंभकर्ण भी रावण की भांति ही शक्तिशाली था, अतः राजनीतिक दृष्टि से उसे निष्क्रिय बना देने के उद्देश्य से रावण शुरू से ही उसे मदिरा के सागर में आकण्ठ डुबोये रखता है। विभीषण की पत्नी सरमा और पुत्री कला अशोकवाटिका में सीता को जाकर मिलते हैं और उसे सांत्वना प्रदान करते हैं। इस खण्ड में अक्षयकुमार, विरुपाक्ष, नरान्तक, मेघनाद आदि रावण-पुत्रों का उल्लेख भी मिलता है। इनमें मेघनाद अत्यन्त पराक्रमी था। उसने इन्द्र तक को हराया था। अतः उसका एक नाम इन्द्रजीत भी था। मंदोदरी मेघनाद को भी समझाने की चेष्टा करती है परंतु सीताहरण के संदर्भ में उसके विचार रावण से भिन्न नहीं थे, अतः वह निराश होती है। ये सब बातें इस खण्ड में उपन्यस्त हुई हैं। [32]

'युद्ध-1' के दूसरे खण्ड की कथा एक ही दिशा में अग्रसरित होती है। इसमें राम-लक्ष्मण के हनुमान-सुग्रीव से मिलने से लेकर

हनुमान के समुद्र-संतरण और लंका-प्रवेश तक की घटनाओं का समावेश हुआ है। ³

इसकी प्रमुख घटनाएं इस प्रकार हैं—सुग्रीव के साथ मैत्री करार, बालि का वध, सुग्रीव का राज्याभिषेक, सुग्रीव द्वारा बालि-घर्षित पत्नी रूमा का स्वीकार, सुग्रीव का अपराध-बोध से पीड़ित रहने के कारण तारा से भी विवाह, बालि की भांति सुग्रीव का भी विलासी होते जाना, अंगद-हनुमान आदि की नाराजगी, सुग्रीव की विलासी प्रवृत्तियों से दु:खी होकर राम का उसे चेतावनी देना, सीतान्वेषण के मार्ग में सुग्रीव की जड़ता का टूटना, सीतान्वेषण हेतु अलग-अलग नायकों के नेतृत्व में कुछ टुकड़ियों को भेजना, दक्षिण की और भेजी गयी टुकड़ी के नेता के रूप में अंगद का जाना, उस टुकड़ी में हनुमान, नल, नील, जाम्बवन आदि सदस्योंका होना, समुद्र-संतरणा की समस्या, दक्षिण-समुद्र-तटीय जातियों तथा नाविकों से मार्गदर्शन प्राप्त कर हनुमान का समुद्र-संतरण में सफ़ल होकर लंका पहुंचना आदि-आदि।[33]

'युद्ध-2' भी दो खण्डों में विभक्त है। उसका प्रथम खण्ड 'अभ्युदय-2' में 345 से 512 (167 पृष्ठ) में तथा द्वितीय खण्ड उसीमें 512-616 (104 पृष्ठ) में उपन्यस्त हुआ है। प्रथम खण्ड का प्रारंभ हनुमान के लंका-प्रवेश से होता है और अन्त राम के सेना-सहित लंका पहुंचने से होता है।

लंका-नगरी के वैभव से हनुमान की आंखे चौंधिया जाती है, लेकिन शीध्र ही वह समझ जाते हैं कि यह सब शोषणमूलक व्यवस्था का परिणाम है। रात के समय वह रावण का महामहालय भी देखते हैं, परंतु उनको वहां सीता कहीं नजर नहीं आती। दूसरे दिन अशोकवाटिका में जानकी मैया से भेंट करने में वह सफ़ल होते हैं। गवद घास की अंगूठी उनकी पहचान का माध्यम होती है।[34] सीतान्वेषण के प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करने हेतु सीता हनुमानजी को अपना चूड़ामणि देती है। अपने उद्देश्य की पूर्ति होने पर हनुमान को चुपचाप लौट जाना चाहिए था, परंतु वे रावण के उस उपवन में उत्पात मचाते हैं। उसमें रावण के कई सेनापतियों सहित उसका पुत्र

अक्षयकुमार मारा जाता है, अन्ततः रावण का परम पराक्रमी पुत्र मेघनाद उनको बंदी बनाकर रावण के सम्मुख उपस्थित करता है। रावण हनुमान के मृत्युदंड की घोषणा करता है, तब विभीषण की तर्कपूर्ण प्रयुक्तियों के कारण यह तय होता है कि उसकी पूंछ बनाकर तथा उसमें आग लगाकर उनको लंका में घूमाया जाय। उनका यह आयोजन अंततोगत्वा उनको ही भारी पड़ता है, क्योंकि लंका में आग लग जाती है और हनुमान को वहां से भागने का मौका मिल जाता है।[35]

उसके पश्चात् दुबारा समुद्र-संतरण करके हनुमान किष्किंधा पहुंचते हैं। हनुमान के कार्य से राम संतुष्ट और प्रसन्न होते हैं। इसके साथ ही युद्ध की तैयारियां शुरू हो जाती है। इधर रावण को समझाने का एक अंतिम प्रयास विभीषण करते हैं, परंतु चाटूकार दरबारियों के सम्मुख रावण लात मारते हुए विभीषण को लंका से निष्कासित कर देता है। अतः अपने एक विश्वसनीय साथी अविंध्य को अपने परिवार का दायित्व सौंपकर विभीषण एक नाव द्वारा समुद्र पार करके राम से मिलते हैं। राम-विभीषण वार्ता के उपरांत राम विभीषण का लंकेश्वर के रूप में राज्याभिषेक करते है।[36] रावण की और से भी शुक नामक एक दूत आता है जो वानरराज सुग्रीव के लिए एक संदेश लाता है। यह रावण की एक कूटनीतिक चाल थी, परंतु वह उसमें सफ़ल नहीं होता है।[37]

उसके बाद समुद्र-संतरण की समस्या सामने आती है। तीन दिन तक कोई उपाय नहीं सूझता, अंततः सागरदत्त नामक नाविक-प्रमुख के प्रस्ताव पर 'स्तिया-मार्ग' में [38] जलपोतों को डूबोकर सेतु-निर्माण किया जाता है। परिणामतः राम की सेना लंका के तट पर पहुंचने में सफ़ल होती है।[39]

'युद्ध-2' का द्वितीय खण्ड पन्द्रह अध्याय और 104 पृष्ठों में उपन्यस्त है। वास्तविक राम-रावण युद्ध यहां से शुरु होता है। रामसेना के अप्रत्याशित आगमन से रावण बौखला जाता है। उसमें वह सीता को गलत सूचना देता है कि उसने राम का वध कर दिया है। कुछ समय के लिए सीता विचलित व स्तंभित हो जाती है, किन्तु

विभीषण की पत्नी सरमा से उसे सही सूचना मिलती है कि राम अपनी सेना के साथ लंका में प्रवेश कर चुके हैं। युद्ध के पूर्व राम एक बार पुनः विष्टिकार के रूप में अंगद को भेजते हैं, परंतु रावण पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। युद्ध शुरू हो जाता है।

उसके बाद का घटनाक्रम इस प्रकार है – युद्ध के पहले दिन ही राम-लक्ष्मण का मुर्च्छित हो जाना, गरूड़ द्वारा प्रेषित औषधियों के उपचार से उनके चैतन्य का लौटना, लक्ष्मणको मेघनाद की अमोघ शक्ति का लगना, हनुमान का किष्किंधा जाकर विशल्यकरणी नामक संजीवनी लाना, उससे लक्ष्मण में प्राणों का संचार होना, दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों की चर्चा, रावण के पास दिव्यास्त्र तो अनेक थे, किन्तु देवास्त्र नहीं थे; युद्ध में रावण के सेनानायक अधिक खेत रहते हैं इससे उसका चिंतित होना, अतः कुंभकर्ण को युद्ध में उतारना, कुंभकर्ण का भीषण युद्ध, तब राम द्वारा वायवास्त्र और ऐन्द्रास्त्र के प्रयोग से उसकी दोनों भुजाओं को काटकर, चन्द्राकार बाण से उसके पैरों को नष्ट कर, इन्द्रास्त्र द्वारा उसके रुण्ड और मुण्ड को अलग कर देना;[40] उसके बाद रावण के मेघनाद को छोड़कर सभी पुत्रों का एक-एक करके खेत रहना; कुंभ-कर्ण के दो पुत्रों – कुंभ और निकुंभ – का मारा जाना; मेघनाद का भयंकर युद्ध करना, राम-लक्ष्मण दोनों का मूर्च्छित कर देना; तेजधर का अपने प्राणों पर खेलकर उनके देहों को चिकित्सालय पहुंचाना, उनको मरा हुआ जानकर मेघनाद का निश्चिंत हो जाना, हनुमान द्वारा लायी औषधियों से राम-लक्ष्मण का पुनः जी उठना, दूसरे दिन निकुंभलादेवी के मंदिर में मेघनाद जब आभिचारिक यज्ञ कर रहा था और उसके पास जब ब्रह्मास्त्र नहीं था तब विभीषण के संकेत पर लक्ष्मण द्वारा ऐन्द्रास्त्र चलाकर मेघनाद का वध करना;[41] सीताहरण के कारण दुर्गा का रावण से अप्रसन्न होना, शचि के परामर्श पर इन्द्र का दुर्गा के पास जाना और रावण-वध पर अभयदान की प्रार्थना करना (इस प्रकार निराला के काव्य 'राम की शक्तिपूजा' का एक दूसरे ढंग से प्रयोग), युद्ध के अंतिम दिवस पर रावण के बचे-खुचे सेनापतियों का भी खेत रहना, रावण द्वारा दुर्द्धर्ष युद्ध, राम पादाति युद्ध कर रहे हैं अतः रावण का उन पर भारी पड़ना,

तब इन्द्र का अपने सारथी सहित रथ प्रदान करना, असम युद्ध का द्वैरथ युद्ध में बदलना, दोनों द्वारा भयंकर प्रकार के दिव्यास्त्रों का प्रयोग, अंततः परिणाम न आता देख राम द्वारा अगस्त्य के उस अस्त्र का प्रयोग करना जिसके लिए ऋषि ने उनको कहा था कि इसका प्रयोग निर्णायक क्षण में ही करना, उस ब्रह्मा-निर्मित बाण को रावण पर छोड़ देना, बाण का रावण के कंठ में लगना और उसके साथ ही उसके मुण्ड का युद्ध-भूमि पर गिर पड़ना और अंततः उसकी मृत्यु होना।[42]

रावण-वध के उपरान्त सात-आठ पृष्ठों में 'युद्ध' उपन्यास को डॉ. कोहली ने समेट लिया है। राम लंका की सत्ता के सूत्र विभीषण को सौंपते हुए कहते हैं – "पिछले शासन के ध्वंसावशेष भी पर्याप्त शक्तिशाली हैं। न तुम उन्हें नष्ट कर सकते हो और न अंगीकार। ऐसे में यह न हो की नये समाज में भी पुराना अन्याय और शोषण चलता रहे; और जिन्होंने नये शासन, नयी व्यवस्था और नये शासक के लिए अपने प्राण दिए हैं अथवा अपना रक्त बहाया है, वे तथा उनके परिवार पहले के समान शोषण के पात्र बने रहें। यदि ऐसा होता रहा तो याद रखना, जन सामान्य को शस्त्र ग्रहण करना आ गया है।"[43]

राम के ये शब्द बड़े सटीक सार्थक और संकेतपूर्ण है और हमारे साम्प्रत समय पर भी लागू होते हैं क्योंकि हमने महात्मा गांधी के नेतृत्व में विदेशी सत्ता रूपी रावण का तो ध्वंस कर दिया है, परंतु पिछले कुछ दशकों की घटनाएं द्योतित कर रही हैं कि अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार और शोषण के चक्र फिर गतिमान हो रहे हैं।

रावण-वध वाली घटना से लेखक ने रावण के दश मस्तिष्क वाले मिथ को भी तोड़ा है और रावण की मृत्यु के रहस्य को बता कर विभीषण पर जो भ्रातृहन्ता का कलंक लगा था उसका भी प्रक्षालन कर दिया है। रावण-वध के उपरान्त सीता की 'अग्नि-परीक्षा' वाले पूरे प्रसंग का भी लेखक ने परिशोधन कर दिया है। विपरीत पैशाचिक प्रवृत्तियों के बीच भी सीता जीवित रही उसे ही राम उसकी 'अग्नि-परीक्षा' मानते हैं। सीता जब 'सतीत्व' के प्रश्न को

उठाती है, तब राम कहते हैं – "सतीत्व मन से होता है, मेरी प्रियतमा ! शरीर से नहीं। किसी व्यक्ति को घाव लग जाए, उसकी भुजा या टॉग कट जाए तो वह पतित या चरित्रहीन नहीं हो जाता।... मैं रूमा के विषय में सुनता था और तुम्हारी कल्पना करता था। रूमा के अपने जेठ ने उसके साथ बार-बार बलात्कार किया। किष्किंधा का सारा राजवंश इस तथ्य से दुःखी था। इस पर भी जब मैंने सुना कि उसे सुग्रीव के पैरों पर गिरकर अपनी निर्दोषता की दुहाई देनी पड़ी है, तो मेरा मन उसके लिए बहुत रोया।... वह रुदन तुम्हारे लिए भी था। कहीं तुम्हें वैसी दुहाई न देनी पड़े।"[44]

इस प्रकार प्रकारान्तर से यह परीक्षा राम की हो गई कि गुरु विश्वामित्र ने जो दीक्षा राम को दी थी उसमें वह सफल हो गए।

सो कथा भले ही पौराणिक हो, किन्तु उसमें निरूपित सत्य और समस्याएं वर्तमान पर भी लागू हो सकती हैं। उस समय के दिव्यास्त्र और देवास्त्र आज के परमाणु-बम और उद्जन-बम हैं। अमरीकी-सभ्यता भौतिकवादी शोषणमूलक रावणी-सभ्यता से मेल खाती है। 'अभ्युदय-2' के प्रकाशकीय वक्तव्य में उपयुक्त ही कहा गया है – "इसें पढ़कर आप अनुभव करेंगे कि आप पहली बार एक ऐसी रामकथा पढ़ रहे हैं, जो सामयिक, लौकिक, तर्कसंगत तथा प्रासंगिक है। यह किसी अपरिचित और अदभुत देश तथा काल की कथा नहीं है। यह इसी लोक और काल की, आपके जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर केन्द्रित एक ऐसी कथा है जो सार्वकालिक और शाश्वत है और प्रत्येक युग के व्यक्ति का इसके साथ पूर्ण तादात्म्य होता है।"[45]

डॉ. कोहली के महाभारत पर आधारित उपन्यास :

रामायण और महाभारत ये दो महाकाव्य भारतीय सभ्यता और संस्कृति के आख्यान हैं। भारतीय धर्म, दर्शन, अध्यात्म, चितन के आगार समान ये ग्रन्थ साहित्य तथा तमाम कलाओं के प्रेरणा-स्रोत हैं। कोई ऐसा भारतीय लेखक या कलाकार न होगा जिसने कभी इन दो ग्रन्थों पर काम न किया होगा। उनमें निरूपित कथाएं और

मिथक न जाने कितने-कितने संदर्भों में प्रयुक्त होते रहते हैं। कई शब्द, प्रतीक, लोकोक्तियां और मुहावरे इनमें से निःसृत हुए हैं। सन् 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध से प्रेरित होकर डॉ. कोहली ने 'दीक्षा' उपन्यास का प्रणयन किया। जब भी किसी महायुद्ध की बात आती है हमारे सामने इन दो महाकाव्यों के युद्ध प्रत्यक्ष हो जाते हैं। 'महाभारत' शब्द तो गृह-युद्ध का प्रतीक बन गया है। परंतु बांगलादेश के निर्माण हेतु जो युद्ध बंगबंधु मुजिबर रहमान के पक्ष में लड़ा गया वह अनेक दृष्टियों से रामायण के युद्ध के निकट पड़ता है, ऐसा स्वयं डॉ. कोहली मानते हैं, जिसे पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया जा चुका है। 'दीक्षा' उपन्यास को अश्रुतपूर्व सफलता हासिल होती है। अतः डॉ. कोहली रामायणकथा को लेकर अन्य तीन उपन्यासों की सृष्टि करते हैं, जिनकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। डॉ. कोहली के रामायण-शृंखला के उपन्यासों को जबरदस्त लोकप्रियता मिलती है, अतः वह हमारे दूसरे गौरवग्रन्थ – महाभारत – को लेकर उपन्यास-सृष्टि में लग जाते हैं। जिन डॉ. कोहली को प्रारंभ में वस्तुअल्पता की समस्या से गुजरना पड़ता था, उनके सामने कथावस्तु का एक अमूल्य खजाना खुल जाता है। रामायण-शृंखला के उपन्यासों को लिखते हुए पौराणिक उपन्यासों को लिखने की हथौटी बैठ जाती है। जिसका भरपूर प्रयोग वह महाभारत पर आधृत उपन्यासों के लेखन में करते हैं। महाभारत की कथा पर उनके आठ उपन्यास प्रकाशित हुए हैं – 'बंधन', 'अधिकार', 'कर्म', 'धर्म', 'अंतराल', 'प्रच्छन्न', 'प्रत्यक्ष' और 'निर्बन्ध'। प्रथम उपन्यास 'बंधन' था, अंतिम 'निर्बन्ध'। इन उपन्यासों के शीर्षक भी प्रतीकात्मक एवं सातत्यपूर्ण हैं। मनुष्य पहले भव-बंधन में पड़ता है। उसके कारण उसमें 'अधिकार-भावना' का जन्म होता है। इस अधिकार प्राप्ति के लिए वह 'कर्म' की ओर प्रवृत्त होता है, परंतु ये कर्म उसे तब फलते है जब उनके मूल में 'धर्म' हो। कोई भी प्रक्रिया हो बीच में एक 'अंतराल' या ठहराव जरूर आता है। अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसे कुछ चीजें 'प्रच्छन्न' भी रखनी पड़ती है। व्यक्ति प्रच्छन्नता के लिए कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, अंत में सबकुछ 'प्रत्यक्ष' हो जाता है और जब इस प्रत्यक्षता का अनुभव व्यक्ति को होने लगता है तब वह

'निर्बन्ध' (मुक्त) हो जाता है। यह बात प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होती है, पर महाभारत के भीष्म पितामह पर तो विशेष रूप से लागू होती है। प्रथम उपन्यास में अपनी प्रतिज्ञा के कारण वह कई प्रकार के बंधनों में बंधते चले जाते हैं, जिनका कोई निस्तार नहीं है। अंतिम उपन्यास में सक्रांति-पक्ष में मृत्यु के साथ वह इन सब बंधनों से मुक्त हो जाते हैं। यही बात कृष्ण, युधिष्ठिर आदि पर भी लागू होती है।

महर्षि वेदव्यास द्वारा प्रणीत 'महाभारत' मूलतः अठारह पर्वों में विन्यस्त है। जहां रामायण में सर्ग के लिए 'कांड' शब्द प्रयुक्त हुआ है, वहां 'महाभारत' में इसके लिए 'पर्व' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'महाभारत' के अठारह पर्व इस प्रकार हैं – आदिपर्व, सभापर्व, वनपर्व, विराटपर्व, उद्योगपर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शैल्यपर्व, सौप्तिक-पर्व, स्त्री-पर्व, शांतिपर्व, अनुशासनपर्व, आश्वमेधिक पर्व, आश्रमवासिक-पर्व, मौसल पर्व, महाप्रस्थानिक-पर्व और स्वर्गारोहण-पर्व।[46]

इन अठारह पर्वों के अतिरिक्त सौ अवांतर पर्व भी है। इस तरह हम देख सकते हैं कि महाभारत में रामायण की अपेक्षा अधिक उपाख्यान आते हैं। अठारह पर्वों का यह 'आर्ष काव्य' हमारा धर्मग्रन्थ भी है, स्मृति भी है, शास्त्र भी है, आख्यान भी है, और काव्य भी है। इसलिए तो कुछ विद्वान उसे 'पंचम् वेद' भी कहते हैं। सूत और मागधों में जो युद्धगीत गाये जाते थे, उन्हें 'नाराशंसी गाथा' कहा जाता था। इसी नाराशंसी गाथा' से आगे चलकर एक कथा निर्मित हुई, जिसे 'जय' कहते है। इस 'जयगाथा' का विस्तार होते-होते वह चौबीस हजार श्लोक का 'भारत' काव्य हो गया। तदुपरांत कालान्तर में उसमें अनेक आख्यान, उपाख्यान, कथानक, उपकथानक मिलते गये। जैसे अनेक नदियां समुद्र में मिलकर उसे 'महासागर' बना देती हैं, ठीक उसी तरह यह काव्य भी आज 'महाभारत के रूप में जाना जाता है। [47]

महाभारत के इस विराट आकार के कारण ही बहुत से विद्वान मानते है कि यह कोई एक व्यक्ति की रचना नहीं है। कई

शताब्दियों तक उसमें प्रक्षेप और परिवर्तन होते गये हैं और आज वह एक विकसनशील महाकाव्य (Epic of growth) के रूप में हमारे सामने है। कुछ विद्वानों के मतानुसार 'व्यास' कोई व्यक्तिवाची संज्ञा न होकर जातिवाची संज्ञा है। वस्तुतः महाभारतकारों को 'व्यास' पद से सम्मानित किया जाता होगा। कृष्णद्वैपायन व्यास द्वारा प्रणीत माने जाने के कारण उसे 'कार्ष्णवेद' भी कहते हैं। [48] ग्रन्थ का यह 'महाभारत' नाम कितना सार्थक है उसके संदर्भ में 'महाभारत' में ही कहा गया है – "देवताओं ने महाभारत को चार वेदों के साथ तराजू पर तौला, उस समय सम्पूर्ण वेदों से जब यह महान सिद्ध हुआ तो उसे 'महाभारत' कहा जाने लगा"। [49]

साहित्य में दो अवधारणाएं हमेशा से रही है – आदर्शवाद और यथार्थवाद। इस दृष्टि से इन दो महाकाव्यों पर विचार करें तो कहा जा सकता है कि रामायण के केन्द्र में आदर्शवाद है, तो महाभारत के केन्द्र में यथार्थवाद है। बाईबल और कुरान की भांति रामायण और महाभारत किसी धर्म-विशेष के ग्रन्थ नहीं है, परन्तु इन दोनों ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर, अनेक पात्रों द्वारा जो विमर्श करवाया गया है उनमें धर्म और नीति की बातों की बहुतायत देखी जा सकती है। इस अर्थ में महाभारत धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और समाजशास्त्र भी है।

महाभारत में वर्णित विषयों के संदर्भ में डॉ. जे.आर. बोरसे अपने शोध-प्रबंध में लिखते हैं –"महाभारत संस्कृत साहित्य का एक बृहद विश्वकोश है। उसके संदर्भ में महर्षि व्यास की ही यह उक्ति प्रसिद्ध है—'यदि हास्ति तदन्यत्र यन्ने हास्तिन तत् क्वचिता' – अर्थात् जो महाभारत में है वही नाना रूपों में सर्वत्र है, जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं है। वेदव्यासजीने स्वयं अपनी संहिता के विषयों का निरूपण ब्रह्माजी से किया था, जो इस प्रकार है –'इसमें वैदिक और लौकिक सभी विषय है। इसमें वेदांगसहित उपनिषद, वेदों का क्रिया विस्तार, इतिहास, पुराण, भूत भविष्य और वर्तमान के वृतान्त, बुढापा, मृत्यु, भय, व्याधि आदि के भाव-अभाव का निर्णय, आश्रम और वर्णों का धर्म, पुराणों का सार, तपस्या, ब्रह्मचर्य, पृथ्वी, चन्द्र,

सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा और युगों का वर्णन;ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, अध्यात्म, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान, पाशुपतधर्म, देवता और मनुष्यों की उत्पत्ति; पवित्र तीर्थ, पवित्र देश, नदी, पर्वत, वन, समुद्र, पूर्व कल्प, दिव्यनगर, युद्ध-कौशल, विविध भाषा, विविध जाति, लोकव्यवहार और सबमें व्याप्त परमात्मा का भी वर्णन किया गया है। 'महाभारत का मुख्य विषय तो कौरव-पाण्डवों के जीवन और युद्ध का ऐतिहासिक निरूपण है। इसके अध्ययन से केवल तात्कालिक, सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, भौगोलिक परिस्थितियों का परिचय ही प्राप्त नहीं होता, अपितु धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तत्वों का सांगोपांग ज्ञान भी प्राप्त होता है।"[50]

संस्कृत महाभारत के अतिरिक्त प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में महाभारत की रचना हुई है जिनमें सारलादास तथा कृष्णसिंह कृत उड़िया महाभारत, काशीरामदास द्वारा अनूदित बॅगला महाभारत, माधवस्वामी विरचित मराठी महाभारत, तुंचतु ए. षुत्छन कृत मलयालम महाभारत आदि उल्लेखनीय हैं।[51]

महाभारत की कथा भारत से बाहर, जिसे प्राचीन इतिहासकार बृहद भारत की संज्ञा देते हैं, भी उपलब्ध होती है। दक्षिण-पूर्व एशिया में इण्डोनेशियाई भाषा में श्री सालेह ने महाभारत कथा को संकलित किया है जिसका हिन्दी अनुवाद डॉ. चन्द्रदत्त पालिवाल ने किया है। इसके संदर्भ में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के भूतपूर्व निर्देशक डॉ. रणवीर रांग्रा लिखते हैं – "यह पुस्तक मात्र महाभारत ही नहीं प्रत्युत दक्षिण-पूर्व एशिया के लोक-जीवन, जन-विश्वासों, चिंतन, मनन, सभ्यता व मूल्यों को भी उजागर करती है।"[52]

उपर्युक्त ग्रन्थ में निर्दिष्ट किया गया है कि इण्डोनेशिया में रामायण की तुलना में महाभारत अधिक लोकप्रिय है। अठारहवीं सदी ई. सन के आते-आते तो राम-लक्ष्मण तथा कृष्ण-अर्जुन में अभेद स्थापित हो गया था और लोग कृष्ण को राम को और अर्जुन को लक्ष्मण का अवतार मानने लगे थे। इण्डोनेशियाई भाषा में महाभारत

पर आधारित वायांग नाटकों के माध्यम से कमसे कम डेढ़ सौ विभिन्न छाया-नाटक धार्मिक एवं सामाजिक अवसरों पर किये जाते हैं। इनको वहां की भाषा में 'लाकोन' (प्रसंग) कहते हैं। अर्जुन और सुभद्रा का विवाह, पाण्डवों का एकचक्रा-नगरी में रहना, घटोत्कच का जन्म आदि अनेक रोमांचकारी घटनाओं से सम्बन्द्ध 'लाकोन' तो वहां के लोग रात-रात भर बैठकर देखते रहते हैं और उनकी अनेक काव्य-पंक्तियां उनकी जिह्वा पर होती हैं।[53]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इस महान ग्रन्थ के संदर्भ में लिखते हैं – "भारतीय दृष्टि से महाभारत पाँचवाँ वेद है, इतिहास है, स्मृति है, शास्त्र है और साथ ही काव्य है। आज तक किसी भारतीय पंडित या आचार्य ने इसकी प्रामाणिकता पर संदेह नहीं किया है। कम से कम दो हजार वर्षों से यह भारतीय जनता के मनोविनोद, ज्ञानार्जन, चरित्र-निर्माण और प्रेरणा-प्राप्ति का साधन रहा है।"54

आधुनिक हिन्दी काव्य के युगचारण कविवर डॉ. रामधारीसिंह दिनकर भारतीय-काव्य के प्रेरणा-स्रोतों पर बात करते हुए कहते हैं – "महाभारत पिछले दो हजार वर्षों से समस्त भारतीय साहित्य का उपजीव्य रहा है। महाभारत से प्रेरणा लेकर लिखे गये काव्यों की संख्या संस्कृत में बड़ी थी और हिन्दी काव्य में भी इसकी संख्या विशाल है। महाभारत भारतीय संस्कृति का आधार ग्रन्थ है।... महाभारतकार ने देश के विभिन्न भागों में फैली विचारधाराओं और संस्कृतियों को एक स्थान पर लाकर इस प्रकार गुम्फित कर दिया है कि कालिदास से लेकर आजतक के सभी भारतीय भाषाओं के कवि महाभारत की कथाओं पर काव्य-रचना कर रहे हैं।"[55]

महाभारत स्वयं अपने विषय में यह उद्घोषणा करता है कि शरीर-निर्वाह के लिए आहार जितना अनिवार्य है, पृथ्वी पर कथा-सृष्टि के लिए महाभारत के आख्यानों का आलंबन भी उतना ही अनिवार्य है।[56]

आज से पचास-साठ साल पहले, गुजरात के गांवों में जो नाटक खेले जाते थे, उनमें 'अभिमन्यु का चक्रव्यूह', 'सुरेखाहरण',

'द्रौपदी-चीरहरण' आदि मुख्य हुआ करते थे। कई गांवों में श्रावण महीने में पारायण होते थे जिनमे रामायण महाभारत आदि का पारायण होता था जिसे लोग बड़े चाव से सुनते थे।[57]

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने महाभारत की इस कथा को बहुत सरल शब्दों में लिखा हैं। ध्यान रहे यह महाभारत पर लिखा उनका एक ग्रन्थ है, उपन्यास नहीं। इस ग्रन्थ की भूमिका में वे लिखते हैं – "महाभारत भारतीय धर्म-दर्शन-संस्कृति का महाग्रन्थ है। आज की भाषा में इसे विश्वकोश भी कह सकते हैं। इसमें एक कथा भी चलती है जो भारत के प्राचीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय होने के साथ-साथ मानव चरित्र के जबरदस्त ऊंच-नीच को बड़े नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करती है। मैंने जब-जब भी उसे पढ़ा, इससे कुछ नया ही प्राप्त किया है।"[58]

स्वतंत्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी (राजाजी) न सिर्फ एक अच्छे राजनीतिज्ञ हैं, बल्कि संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य के बड़े विद्वान भी हैं। उन्होंने अंग्रेजी में भारत के इन दोनों ग्रन्थों के बारे में बड़ा ही तलस्पर्शी एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। उन्होंने अपने 'महाभारत' की भूमिका में लिखा है – "Centuries ago, it was proclaimed of the 'Mahabharata' : 'What is not in it, is nowhere.' After twenty five centuries, we can use the same words about it."[59] यही बात एक संस्कृत उक्ति के रूप में भी कही गयी है जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। महाभारत के महत्व एवं उपयोगिता के संदर्भ में अपने उसी ग्रन्थ की प्रस्तावना में वह आगे लिखते हैं –

"The Mahabharata is not a mere epics it is a romance, telling the tale of heroic men and women and of some who were divine; it is a whole literature in itself, containg a code of life; a philosophy of social and ethereal relations and speculative thought on human Problems that is hard to rival; but above all, it has for its core the Gita, which is, as the world is beginning to find out, the noblest of scriptures and the grandest of sagas in which the climax is reached in the wondrous Apocolyuse in the eleventh canto."[60]

अर्थात् महाभारत केवल एक महाकाव्य मात्र नहीं है, वह एक रोमांचक कहानी है जिसमें नायक-नायिकाओं तथा देवताओं के

वीरतापूर्ण कहानियों को निरूपित किया गया है। वह एक ऐसा साहित्य है जिसमें जीवन के मूल्यों को उकेरा गया है, उसमें सामाजिक एवं नैतिक विचारों का दर्शन है, मानव-जीवन की कठिनतम समस्याएं है, किन्तु इन सबके ऊपर है गीता, जो विश्व के प्रारंभ से लेकर अभी तक के ग्रन्थों में महान है जिसके चरम शिखर पर अभूतपूर्व विनाश-लीला है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि यह महाभारत-ग्रन्थ भारतीय-मनीषा का एक अद्वितीय उदाहरण है। यह एक ही साथ समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र और नीतिशास्त्र का भी ग्रन्थ है। व्यक्ति-जीवन या समाज-जीवन की कोई ऐसी समस्या न होगी जिसका निरूपण इस महान ग्रन्थ में न हुआ हो। डॉ. जे. आर. बोरसे इसके माहात्म्य के संदर्भ में उपयुक्त ही लिखते हैं – "इसके अनेक उपाख्यानों में धर्म के विविध रूपों की व्याख्या की गई है। उदाहरण के लिए वनपर्व में द्रौपदी सत्यभामा को पत्नी-धर्म की शिक्षा देती है। महाभारत के भीष्मपर्व में श्रीकृष्ण युद्ध-स्थल में गीता के रूप में उपदेश देते हैं। उसमें धर्म-संस्थापना ही उनके जीवन का हेतु बताया है। महाभारत में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त शिव को भी स्थान दिया गया, साथ ही वेदांत, सांख्य, योग, पाँच रात्र, पाशुपत आदि अनेक मतों का एकीकरण भी हुआ। धर्म की एकता प्रतिपादित करने के लिए यज्ञ, याग तीर्थ, उपवास, अहिंसा आदि को भी स्थान दिया गया है। इस प्रकार मानव-जीवन के कर्म विधानों का धार्मिक विवेचन होने के कारण महाभारत का धार्मिक महत्व अक्षुण्ण रहेगा। धर्मग्रन्थ के साथ नीतिग्रन्थ के रूप में महाभारत की महत्ता सर्वज्ञात है। मानव-जीवन के आचार – व्यवहार नीति के अंतर्गत आते हैं। जीवन के कार्य – क्षेत्र में क्या उचित और क्या अनुचित है? इसका निरूपण शान्तिपर्व में हुआ है। उद्योगपर्व के अंतर्गत विदूरनीति और और नीतिधर्म का विस्तृत विवेचन है। व्यवहार, चातुर्य, लोकनीति, समाज-नीति के व्यवहारिक उपदेश उपलब्ध है। महाभारत में राजनीति का भी व्यापक विश्लेषण हुआ है। मुख्यतः राज्य व्यवस्था, राजा के कर्तव्य, राजा विषयक तत्कालीन मान्यता आदि पर विस्तृत प्रकाश

पड़ता है। प्रजा के प्रति, ब्राह्मणों और अन्य वर्णों के प्रति राजा के कर्तव्य के विवेचन किया गया है। वन में जाते समय धृतराष्ट्र की राजनीतिक शिक्षा में कूटनीति की अनेक बातों पर भी विचार हुआ है।"[61]

महाभारत कथा-आख्यानों की मंजूषा है। अतः स्वाभाविक रूप से उसे आधार बनाकर साहित्य में अनेक काव्यरूपों की सृष्टि होती रही है और होती रहेगी। उसके मिथकीय तत्वों में अखूट संभावनाएं भरी पड़ी हैं। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में महाभारत के आधार पर निम्नलिखित प्रबंध काव्य रचे गये हैं – 'अंगराज' (आनंदकुमार), 'जयभारत', (मैथिलीशरण गुप्त), 'कुरुक्षेत्र' (रामधारीसिंह दिनकर), 'सेनापति कर्ण' (लक्ष्मीनारायण मिश्र), 'कृष्णांबरी' (रामावतार अरुण पोददार), 'द्रोणाचार्य'(डॉ. इन्द्रपालसिंह), 'उत्तर महाभारत' (डॉ. किशोर काबरा) आदि-आदि। इनके अतिरिक्त कुछ खण्डकाव्यों की रचना भी हुई हैं जिनमें निम्नलिखित को उल्लेखनीय कहा जा सकता है – 'कर्ण' (केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'), 'महारथी' (मोहनलाल अवस्थी), 'रश्मिरथी' (दिनकर), 'हिडिंबा' (मैथिलीशरण गुप्त), 'पांचाली' (डॉ. रांगेय राघव), 'एकलव्य' (रामकुमार वर्मा), 'गुरुदक्षिणा' (विनोदचन्द्र पांडेय), 'कौन्तेय-कथा' (उदयशंकर भट्ट), 'चक्रव्यूह' (विनोदचन्द्र पांडेय), 'भीष्म' (डॉ. स्वर्णकिरण), 'महाप्रस्थान' (नरेश मेहता), 'सूर्यपुत्र' (डॉ. जगदीश चतुर्वेदी), 'चित्रांगदा' (चांदमल अग्रवाल), 'जयद्रथवध' (मैथिलीशरण गुप्त), 'नरो वा कुंजरो वा' (डॉ. किशोर काबरा), 'कालजयी' (दिनेशचन्द्र द्विवेदी) आदि-आदि।

उल्लिखित प्रबंधकाव्यों के अलावा महाभारत को केन्द्र में रखते हुए कुछेक गीतिनाट्यों की रचना भी हुई है, जैसे – 'त्रिपथगा' (भगवतीचरण वर्मा : इसमें 'कर्ण', 'महाकाल' और 'द्रौपदी' ये तीन गीतिनाट्य संकलित हैं), 'अन्धायुग' (डॉ. धर्मवीर भारती), 'अश्वत्थामा' (उदयशंकर भट्ट), 'पांचाली' (जानकीवल्लभ शास्त्री)।

अतः रामायण को लेकर पौराणिक उपन्यासों के लेखन में जिनकी हथौटी बैठ गयी हो ऐसे 'अप्रतिम कथायात्री' (यह बिरुद डॉ.

विवेकीराय ने डॉ. नरेन्द्र कोहली को दिया है) डॉ. नरेन्द्र कोहली का ध्यान इस कथा-मंजूषा पर न जाय ऐसा तो हो ही नहीं सकता । अतः उन्होंने भी महाभारत की कथा को लेकर पूर्व-उल्लिखित आठ उपन्यासों की सृष्टि की है जिनकी चर्चा अब क्रमशः की जायेगी –

(1) बंधन (1988) :

पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि महाभारत शृंखला के डॉ. कोहली के उपन्यासों के नाम अपने प्रतीकात्मक रूप में सार्थक एवं सटीक है। " 'बंधन' शान्तनु, सत्यवती तथा भीष्म के मनोविज्ञान तथा जीवन-मूल्यों की कथा है। घटनाओं की दृष्टि से यह सत्यवती के हस्तिनापुर में आने तथा हस्तिनापुर से चले जाने के मध्य की अवधि की कथा है जिसमें जीवन के उच्च आध्यात्मिक मूल्य जीवन की निम्नता और भौतिकता के सम्मुख असमर्थ होते प्रतीत होते हैं, और हस्तिनापुर का जीवन महाभारत के युद्ध की दिशा ग्रहण करने लगता है। उस भावी विनाश से मानवता को बचाने के लिए कृष्ण द्वैपायन व्यास अपनी माता सत्यवती को हस्तिनापुर से निकाल अपने साथ ले जाते हैं, किन्तु तब तक हस्तिनापुर शांतनु, सत्यवती और भीष्म के कर्म-बंधनों में बंध चुका है और भीष्म भी उससे मुक्त होने की स्थिति में नहीं है।"[62]

'बंधन' की कथा का प्रारंभ भीष्म की प्रतिज्ञावाले प्रसंग से होता है, जिसके कारण ही पिता शान्तनु उन्हें यह नाम देते हैं। उनका जन्मना नाम तो देवव्रत था। देवव्रत के जन्म के बाद शान्तनु की पत्नी गंगा उनको छोड़कर चली गयी थी, क्योंकि उनके विवाह की जो शर्त थी, शान्तनु ने उसका भंग किया था। गंगा देवव्रत को अपने साथ ले जाती है और उसके आठ वर्ष के हो जाने पर अनुबंध के अनुसार वह देवव्रत को लौटा देती है। उसके बाद देवव्रत का जीवन विभिन्न गुरुकुलों में व्यतीत होता है, जिसमें वह शस्त्रास्त्र विद्या, शास्त्रविद्या, न्यायशास्त्र, नीतिशास्त्र, धर्म शास्त्र इत्यादि का गहन अध्ययन करते हैं। देवव्रत जब युवान हो जाते हैं, तब शान्तनु पुनः एक बार किसीके प्रेम में घायल होते है। शान्तनु जिसके प्रेम में छटपटाते है वह निषादराज की कन्या सत्यवती है। छटपटाहट का

कारण निषाद राज की वह शर्त थी जिस पर वह सत्यवती का विवाह शान्तनु से करने के लिए राजी हुए थे। इसे भी शान्तनु के भाग्य की विडम्बना ही समझना चाहिए कि जब-जब वह किसीके प्रेम-बाण से आहत हुए, विवाह के लिए उन्हें किसी-न-किसी प्रकार की कठोर शर्त से ही गुजरन पड़ा। निषादराज ने जो शर्त रखी थी उसका सीधा सम्बन्ध देवव्रत के जीवन से था, हस्तिनापुर के भाग्य से था। वह शर्त यह थी कि हस्तिनापुर का उत्तराधिकारी सत्यवती शान्तनु का पुत्र होगा न कि गंगापुत्र – गांगेय देवव्रत। निषादराज की इस शर्त को शान्तनु कैसे मान लेते? इसीलिए वे दुःखी, निराश और खिन्न थे। देवव्रत शान्तनु के दुःख के कारण का अन्वेषण करते हैं, इतना ही नहीं सीधे निषादराज के पास जा पहुंचते हैं और उन्हें वचन देते हैं कि हस्तिनापुर की राजगद्दी पर उनकी पुत्री के पुत्र का ही अधिकार रहेगा। निषादराज बहुत ही व्यवहारपटु थे। वह देवव्रत से कहते है कि हमें आपके वचन पर विश्वास है, किन्तु भविष्य में यदि आपकी सन्तति हस्तिनापुर पर अपना अधिकार जतावे तो उसका क्या निवारण होगा? तब कुमार देवव्रत एक भीषण प्रतिज्ञा करते हैं कि वह आजीवन अविवाहित रहेंगे। शान्तनु जब इससे अभिज्ञ होते हैं तब देवव्रत की इस भीषण प्रतिज्ञा से अभिभूत होकर वह कुमार देवव्रत का नया नामाभिधान करते हैं – भीष्म ! [63]

'बंधन' उपन्यास के नायक एक प्रकार से देखा जाए तो भीष्म ही है। अपने पिता के सुख व प्रसन्नता के लिए वह जो प्रतिज्ञा करते हैं उसके कारण ही वे बंधनों की अनेकानेक शृंखलाओं में जकड़ते चले जाते हैं। इस प्रतिज्ञा के कारण ही सत्यवती शान्तनु का विवाह संपन्न होता है। शान्तनु को सत्यवती से दो पुत्र होते हैं – चित्रांगद और विचित्रवीर्य। चित्रांगद भयंकर रूप से अभिमानी और उच्छृंखल था। कारण अकारण लोगों से भीड़ जाता था। इसकी इस युयुत्सा के कारण एक युद्ध में वह मारा जाता है। विचित्रवीर्य निर्वीर्य रुग्ण और शक्तिहीन था। वासना के अतिरेक के कारण वह शक्तिहीन हो चुका था। उस प्रतिज्ञा के कारण ही माता सत्यवती के आदेश पर

भीष्म को निर्वीर्य विचित्रवीर्य के लिए विवाह के लिए काशीराज की पुत्रियों का अपहरण करना पड़ता है।

काशीराज की तीन पुत्रियां थीं – अम्बा, अंबिका और अंबालिका। भीष्म उनका अपहरण करते हैं। अम्बा सोचती हैं कि भीष्म ने अपहरण उनके लिए किया है, परंतु जब वह इस सत्य से अवगत होती है कि उसका तथा उसकी बहनों का विवाह भीष्म से नहीं, बल्कि विचित्रवीर्य से होने वाला है, तब वह विरोध करती है कि वह तो मन-ही-मन से शाल्व को वर चुकी है। तब भीष्म उसे शाल्व के पास छोड़ आते हैं, किन्तु शाल्व यह कहते हुए अम्बा को अस्वीकृत करता है कि वह एक अपहृता स्त्री से विवाह नहीं कर सकता। अम्बा न घर की रहती है, न घाट की। ऐसी स्थिति में वह अपने नाना होत्रवाहन को लेकर भीष्म के गुरु परशुराम को मिलती है। परशुराम क्रोधित होकर भीष्म से युद्ध के लिए भी तैयार हो जाते हैं, परंतु तब भीष्म अपने गुरु को सही वस्तु-स्थिति से अवगत कराते हैं। परशुराम को जब ज्ञात होता है कि अम्बा की वह याचना धर्मयाचना नहीं, अपितु कामयाचना थी तब परशुराम होत्रवाहन को सहायता करने से मना कर देते हैं। अम्बा भीष्म को अभिशाप देते हुए आत्महत्या कर लेती है। न चाहते हुए भी, दूसरों के लिए, भीष्म को ऐसे अनेकानेक पाप-बंधनों से भी बंधना पड़ता है।

अंबिका और अंबालिका से विचित्रवीर्य का विवाह संपन्न कराया जाता है। राजवैद्यों की सलाह के विरूद्ध अति-संभोग से विचित्रवीर्य का असामयिक निधन हो जाता है। पुनः हस्तिनापुर के वारिस की समस्या आती है। भीष्म नियोग-विधि का सुझाव देते है। किसी अपरिचित विद्वान ब्राह्मण को नियुक्त पुरुष के रूप में आमंत्रित करने की बात आती है, तब सत्यवती अपने कानिन-पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यास को बुलाने का प्रस्ताव रखती है। यहां सत्यवती और ऋषि पराशर की प्रेम-कहानी पूर्व-दीप्ति के रूप में आती है। शान्तनु से विवाह के पूर्व ही सत्यवती को पराशर से एक पुत्र प्राप्त हुआ था, जो उनके आश्रम में ही बड़ा हो रहा था। उस युग में ऋषि-समाज में

कानीन-पुत्र को मान्यता थी। सत्यवती-पराशर का यह कानीन-पुत्र ही कृष्ण द्वैपायन व्यास है जो महाभारत के रचयिता माने जाते हैं।

माता की आज्ञा को शिरोधार्य रखकर व्यास और अंबिका का नियोग करवाया जाता है, परंतु व्यास की विरूपता के कारण अंबिका संभोग-काल में अपनी आंखें बन्द कर लेती है। अतः व्यासजी कहते हैं कि बालक दृष्टिहीन पैदा होगा। अतः माता सत्यवती उनको पुनः अंबालिका के लिए आमंत्रित करती है। अंबालिका भय से पीली पड़ जाती है, फलतः पांडुरोगी बालक होता है। अतः तीसरी और आखिरी बार व्यासजी को आमंत्रित किया जाता है। यह नियोग अंबिका और अंबालिका की दासी मर्यादा के साथ संपन्न होता है। मर्यादा पूर्ण भक्ति-भाव और समर्पण भाव से व्यासजी के साथ नियोग में सम्मिलित होती है, अतः उससे जो बालक उत्पन्न होता है वह धर्मज्ञ एवं नीति-निपुण होता है। इस प्रकार विचित्रवीर्य के क्षेत्र अंबिका, अंबालिका और मर्यादा से क्रमशः धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर का जन्म होता है। धृतराष्ट्र हृष्टपुष्ट और बलवान है, पर अंध होता है। पांडु शौर्यवान व पराक्रमी है, पर पांडुरोगी होता है। विदुर धर्म-शास्त्रवेत्ता व नीति-निपुण होता है।[64]

काल-चक्र घूमता है। तीनों वयस्क हो जाते हैं। तब उनके लिए कन्याओं को ढूंढने का कार्य भी भीष्म को ही करना पड़ता है। भीष्म गांधार-नरेश को पराजित कर उनकी कन्या गांधारी को धृतराष्ट्र के लिए ले आते है। गांधारी भी सत्यवती की भांति अतीव सुंदर थी, पर उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध एक अंध पुरुष से जबरदस्ती विवाह करना पड़ता है। धृतराष्ट्र को शैशवकाल से बलवान किन्तु धूर्त, कपटी व स्वार्थी बताया है। गांधारी में प्रतिशोध-भाव है। कुन्तिभोज की पोषिता-पुत्री कुन्ती पाण्डु का वरण करती है। प्रथम रात्रि में ही कुन्ती को पांडु की असमर्थता का पता चल जाता है। पांडु अपनी असमर्थता छिपाने के लिए अकारण ही दिग्विजयों के लिए निकल पड़ता है। भीष्म उसका दूसरा अर्थ निकालते है कि शायद पांडु को कुन्ती पसंद नहीं है। अतः वह मद्र-नरेश की कन्या माद्री को शुल्क चुकाकर लाते हैं। पांडु इन दोनों से दूर-दूर भागता रहता है। परंतु कुन्ती-माद्री दोनों

पांडु को विवश कर देती हैं, अतः वह उनको भी अपने साथ ले जाते हैं। उन तीनों का शतश्रृंग की ओर जाना, वहां के कुलपतियों के साथ विभिन्न विषयों पर धर्म-अध्यात्म-चर्चा, शतश्रृंग के कुलपति के सम्मुख पांडु द्वारा अपनी समस्या को रखना, ऋषि द्वारा नियोग-विधि का सुझाव; इस तरह धर्मराज, वायु-देवता तथा इन्द्र जैसे नियुक्त पुरुषों द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन का जन्म कुन्ती द्वारा; माद्री का भी अंततः नियोग के लिए तैयार होना और अश्विनीकुमारों द्वारा नकुल और सहदेव का जन्म होना;[65] समदौखिक संवेदना के कारण कुन्ती-माद्री में सख्य-भावना का उत्पन्न होना, लाख प्रयत्नों के बावजूद गांधारी का युधिष्ठिर से पूर्व पुत्र उत्पन्न करने में असफल रहना, युधिष्ठिर के जन्म की सूचना से क्रोधित होकर गांधारी का अपनी कोख पर मुष्टि-प्रहार करना, उससे रक्त-स्राव का होना, शैल्य-चिकित्सा से गर्भ का बच जाना, तत्पश्चात् गांधारी द्वारा सुयोधन, सुशासन आदि पुत्रों का जन्म; उधर शतश्रृंग में चिकित्सा से पांडु का कुछ-कुछ ठीक होना, माद्री और पांडु का संभोगरत होना, उसीमें पांडु का निधन, माद्री-कुन्ती संवाद, माद्री का सती हो जाना, पांचों पुत्रों को लेकर कुन्ती का हस्तिनापुर लौटना, राज-परिवार का शोक-संतप्त होना, व्यासजी का हस्तिनापुर आना, माता सत्यवती को अपने साथ ले जाना, अंबिका और अंबालिका का भी उनके साथ जाना आदि घटनाओं को उपन्यास के उत्तरार्द्ध में उपन्यस्त किया गया है।[66]

इस प्रकार उपन्यास में दो स्थानों पर नियोग-विधि का उल्लेख हुआ है। धृतराष्ट्र, पांडु आदि का जन्म भी इस विधि से हुआ है। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव का जन्म भी इसी विधि से होता है। इससे उस समय की समाज-व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। विवाह-पूर्व के पुत्र को कानीन-पुत्र कहा जाता था और नियोग-विधि से उत्पन्न संतति को क्षेत्रज कहा जाता था। व्यास और कर्ण कानीन पुत्र हैं। ऋषि-समाज में उसकी मान्यता थी, किन्तु क्षत्रिय समाज ने उसे अस्वीकृत कर दिया था। फलतः कुन्ती को अपने कानीन-पुत्र कर्ण का त्याग कर देना पड़ा था।

'बंधन' उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। इसमें भीष्म अपनी प्रतिज्ञा के कारण अनेक प्रकार के बंधनों में जकड़ते चले गये हैं। न्याय, विवेक, धर्म और नीति के कीर्ति-स्तम्भ जैसे भीष्म को अनेक पाप-कर्म करने पड़ते हैं। कइयों के साथ अन्याय करना पड़ता है। ऐसा अन्याय उनको अम्बा, अंबिका तथा अंबालिका के साथ करना पड़ा। धृतराष्ट्र और पांडु के कारण गांधारी, कुन्ती और माद्री के साथ अन्याय करना पड़ा। इसी एक प्रतिज्ञा के कारण अंततः कुरु वंश का नाश होता है।

मन्नू भण्डारी के उपन्यास 'आपका बण्टी' में एक महत्वपूर्ण वाक्य आया है : "एक बार जब जीवन की धुरी गड़बड़ा जाती है, तो सबकुछ गड़बड़ा जाता है।"[67] यहां पर पूरे युग की धुरी गड़बड़ा जाती है। एक अच्छे पर गलत निर्णय के कारण समूचे वंश का नाश हो जाता है। यहां मेरे गुरु डॉ. पारूकान्त देसाई साहब का एक दोहा मेरी स्मृति में कौंध रहा है :

"गलत गलत से मिल गये, गलत गलत सब होय।
गलत गलत सच हो कहे, गलत गलत सच होय॥"[68]

(2) अधिकार (1990):

जन्म के बंधनों में पड़ने के बाद व्यक्ति अपने 'अधिकार' की बात सोचता है। फलतः महाभारत शृंखला का द्वितीय उपन्यास 'महासमर-2' का शीर्षक 'अधिकार' रखा गया है, जो अत्यन्त सार्थक और सटीक है। प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया है – 'अधिकार' की कहानी हस्तिनापुर में पांडवों के शैशव से आरंभ होकर, वारणावत के अग्निकांड पर जाकर समाप्त होती है। वस्तुतः यह खण्ड अधिकारों की व्याख्या, अधिकारों के लिए हस्तिनापुर में निरंतर होने वाले षड्यंत्र, अधिकार को प्राप्त करने की तैयारी तथा संघर्ष की कथा है। राजनीति में अधिकार प्राप्त करने के लिए होनेवाली हिंसा तथा राजनीतिक त्रास के बोझ में दबे हुए असहाय लोगों की पीड़ा की कथा समानान्तर चलती है। सतोगुणी राजनीति तथा तमोन्मुख रजोगुणी राजनीति का अंतर इसमें स्पष्ट

होता है। एक ओर निर्लज्ज स्वार्थ और भोग तथा दूसरी ओर अनासक्त धर्म-संस्थापना का प्रयत्न। दोनों पक्ष आमने-सामने है।... महाभारत की कथा में कृष्ण का प्रवेश भी इसी खंड में हो गया है।"[69]

'महाभारत' को अधिकांश लोग कौरव-पांडवों की कथा के रूप में ही पहचानते हैं। कौरव-पांडवों की यह कथा वस्तुतः प्रस्तुत उपन्यास से ही शुरू होती है। और यहां से ही शुरू होता है हस्तिनापुर के अधिकार के लिए वह आंतरिक युद्ध और संघर्ष जो अन्ततः कुरुक्षेत्र के महासमर के रूप में विस्फोटित होता है। हस्तिनापुर के राज्य पर कुरुवंश के राजाओं का अधिकार था। अतः कुरुवंश की सभी संतानों को 'कौरव' ही कहना चाहिए। इस तरह न केवल दुर्योधन आदि कौरव, अपितु युधिष्ठिर आदि 'पांडव' भी 'कौरव' ही कहलायेंगे। किन्तु मामा शकुनि की कूटनीति ने शुरू से ही यह भेदनीति उनमें डाल दी थी। वह धृतराष्ट्र की संतानों के लिए 'कौरव' शब्द का प्रयोग शुरू करता है और पांडु के पुत्रों के लिए इसी तर्ज पर 'पांडव' शब्द व्युत्पन्न करता है। इतना ही नहीं उन पाँच भाइयों में भी फूट डालने के लिए वह युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन के लिए 'कौन्तेय' और नकुल-सहदेव के लिए 'माद्रेय' शब्दों का प्रयोग करता है।[70] उसकी यह भेदनीति न केवल कौरवों और पांडवों में फूट डालती है और उनको परस्पर के शत्रु खेमों में बांट देती है, बल्कि दुर्योधन के मन में वह ठूंस-ठूंस कर यह भर देता है कि हस्तिनापुर पर वास्तविक अधिकार केवल उन असली 'कौरवों' का ही है। पांडव पांडु के पुत्र नहीं बल्कि कुन्ती और माद्री के पुत्र हैं। इस प्रकार कुरुवंश की दीवारों में लगी यह शकुनि रूपी दीमक अंततः उस भवन को ही खोखला कर देती है। एक पुरानी कहावत है – "दीवार को खाये आला और घर को खाये साला।" कुरुवंश और शकुनि के संदर्भ में यह कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती है। वस्तुतः गांधारी के साथ शकुनि का आना ही कुरुवंश के पतन का कारण हो जाता है और कदाचित् गांधारी के पिता की भी यह कूटनीति रही हो कि शकुनि उस महाशक्तिशाली कुरुवंश को भीतर ही भीतर खोखला कर डाले।

'अधिकार' कौरव और पांडवों के शैशव से लेकर उनकी युवावस्था तक की कहानी है। जैसे-जैसे यह बड़े होते हैं। उनको गुण-अवगुण और सामर्थ्य सीमा भी स्पष्ट होते जाते हैं। शनैः शनैः पांडव शक्तिशाली होते जाते हैं और कौरव अभिमानी और उच्छृंखल। उनकी शिक्षा-दीक्षा पहले कृपाचार्य और बाद में द्रौणाचार्य के द्वारा होती है। गुरु द्रोणाचार्य अपने समय के माने हुए युद्धाचार्या हैं। महान योद्धा और शस्त्रास्त्रों के आविष्कार। वह पांचालनरेश द्रुपद के सहाध्यायी और मित्र थे, परंतु राजा होने के उपरान्त द्रुपद उन सम्बन्धों को भूल जाते हैं और सत्ता के नशे में द्रोण को अपमानित करते हैं। उस अपमान का बदला लेने के लिए द्रोण हस्तिनापुर आते हैं। भीष्म उनकी योग्यता को पहचान कर राजकुमारों की शिक्षा के लिए नियुक्त कर लेते हैं। वेतनयुक्त शिक्षकों की परंपरा शायद यहां से शुंरु होती हैं। कृपाचार्य वैसे गुरु द्रोण के साले हैं।

गुरु द्रोंण केवल विद्या देने के लिए नहीं देते। उनका मकसद तो द्रुपद से प्रतिशोध लेने का था। अतः अपने छात्रों की योग्यता को पहचान कर उन्हें शस्त्रास्त्रों की विधा में पारंगत करने में वह अपना जि-जान देते है। अर्जुन कि गुरुभक्ति और लगन को देखते हुए उसके प्रति उनका विशेष पक्ष्पात था। उस पक्षपात के कारण ही वे एकल्व्य के साथ अन्याय करते है और गुरु-दक्षिणा के रुप में उसके दायें हाथ का अंगूठा ही मांग लेते हैं। छात्र-शिक्षा के प्रदर्शन और उनकी परीक्षा वाले प्रसंग में कर्ण अर्जुन को ललकारता है तब कृपाचार्य उसकी जाति के प्रश्न को लेकर उसे चूप करा देते हैं। तब दुर्योधन कर्ण को अंग प्रदेश का राजा घोषित करता हैं। इस प्रसंग से दुर्योधन को एक शक्तिशाली मित्र प्राप्त होता है।

भीष्म पितामह कौरवों की उद्दंडता को अनुशासित करने बहुतेरे प्रयत्न करते है, परन्तु ढाक के तीन पात की तरह कौरवों पर उसका कोई असर नहीं होता। इसके पीछे धृतराष्ट्र की धूर्तता, गांधारी का पुत्र-मोह और शकुनि की कूटनीति भी जिम्मेदार है। प्रमाणकोटि वाले प्रसंग में दुर्योधन भीम की हत्या का असफल प्रयास करता है। युयुत्सु यद्यपि धृतराष्ट्र का पुत्र था, परंतु उसकी माता गांधारी की

दासी थी। वह धृतराष्ट्र होते हुए भी हमेशा पांडवों के पक्ष में रहता है। भीम वाले प्रसंग में भी उसके द्वारा ही रहस्य सामने आता है। दुर्योधन तथा दुःशासन के जन्म-नाम तो सुयोधन और सुशासन थे, परंतु इस प्रसंग के बाद भीष्म पितामह उनको दुर्योधन तथा दुःशासन नाम देते हैं।[71]

इसके बाद के प्रसंगों में कर्ण और अश्वत्थामा का दुर्योधन के पक्ष में जाना, राजकुमारों की शिक्षा का पूर्ण होना, गुरु-दक्षिणा में द्रोण का यह प्रस्ताव रखना कि पांचाल-नरेश को बंदी बनाकर उनके सामने प्रस्तुत करना है, कौरवों का उसमें असफल रहना, भीम और अर्जुन के नेतृत्व में युधिष्ठिर का सफल होना, फलतः द्रुपद में प्रतिशोध कि ज्वाला का भभकना, उस प्रतिशोध को पूरा करने के लिए धृष्टद्युम्न और द्रौपदी को प्रशिक्षित करना, मथुरा से अक्रूर का आकर कुन्ती तथा पांडवों को मिलना, अक्रूर द्वारा कृष्ण के गुणों का बखान, अक्रूर का भीष्म तथा विदुर आदि से मिलना, अपनी वाक्पटुता से धृतराष्ट्र को लपेटे में लेना, युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक की तिथि निर्धारित करवा लेना, इस पर गांधारी का धृतराष्ट्र पर क्रोधित होना, धृतराष्ट्र द्वारा कपटनीति की बात करते हुए दुर्योधन और गांधारी दोनों को समझा लेना, कृष्ण-बलराम का युवराज्याभिषेक के समय आना, उनका भीष्म विदुर आदि से मिलना, धर्म-संस्थापना की बात करना, भीष्म और विदुर का उनसे प्रभावित होना, युवराज्याभिषेक के समय युधिष्ठिर द्वारा अनृशंसता के सिद्धान्त की बात,[72] उस समय धृतराष्ट्र द्वारा कुछ उद्घोषणाएं जिसे कृष्ण व्यंग्य में दृष्टिहीन की दूर-दृष्टि कहते हैं,[73] अभिषेक के उपरान्त किसी गुप्त सूचना से कृष्ण-बलराम का मथुरा के लिए प्रस्थान कर जाना, युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक से भीष्म में एक प्रकार से पूर्णकाम होने की संतुष्टि का भाव जैसी घटनाओं की परिगणना कर सकते हैं।

अंग्रेजी की एक कहावत है – “A man is trule known by the company he keeps” – अर्थात् मनुष्य के चरित्र की पहचान उसके मित्रों से भी होती है। उपन्यास के प्रस्तुत खण्ड में हम उभय पक्ष के मित्रों की दो धुरियां देख सकते हैं। कौरवों के पक्ष में दुःशासन, कर्ण,

शकुनि, अश्वत्थामा, कणिक, धृतराष्ट्र आदि हैं; तो दूसरी तरफ भीष्म, विदुर, व्यास, कृष्ण, बलराम आदि हैं। धृतराष्ट्र की धूर्त नीति के कारण भीष्म-विदुर आदि न्याय-धर्म-विवेक संपन्न लोग दुःखी कहते हैं। वे अनुभव करते हैं कि दुष्प्रवृत्तियां जितनी तीव्रता और शीघ्रता से संगठित होती है, सदवृत्तियां नहीं हो पातीं। इस संदर्भ में विदुर एक स्थान पर कहते हैं – "सामान्यतः होता यही है कि अन्याय और स्वार्थ तो संगठित होकर, न्याय तथा सर्वहित पर प्रहार करते हैं; किन्तु न्याय और सर्वहित न तो संगठित होते हैं, न प्रहार करते हैं, न प्रहार करनेवाले लोगों को बल देते हैं।"[74] वस्तुतः विदुर का यह नीति-कथन हमारी साम्प्रतिक सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों पर भी इतनी ही लागू होता है। सच ही–

"न्याय नीति और धरम का खाता मलियामेट।
इत्र-बूंद नहीं फैलता, फैले हैं घास्लेट ॥"[75]

'अधिकार' उपन्यास में अधिकार किनका होना चाहिए उस पर भी विचार हुआ है। आर्यावर्त में जहां-जहां भी अत्याचारियों और जुल्मियों का शासन था, वहां-वहां उनके आततायी जुल्मी शासकों का वध करके कृष्ण ने उनके ही वंश या कुल के सुयोग्य व्यक्तियों को सिंहासन पर बिठाया है। इसे इस शृंखला के अन्य उपन्यासों में भी हम लक्षित कर सकते हैं। अधर्म का नाश करके धर्म की स्थापना करना यही एक मात्र लक्ष्य कृष्ण का है। वह स्वयं सम्राट नहीं बनता। 'king maker' की भूमिका उन्होंने अदा की है। युधिष्ठिर के एक प्रश्न के उत्तर में यादव प्रतिनिधि अक्रूर कृष्ण और जरासंघ के चरित्रगत अंतर को स्पष्ट करते हैं – "जरासंघ के तथाकथित मित्रों – दामघोष, भीष्मक, साल्व, दंतवक्त्र – इनमें से किसीको भी पूछो कि उन्हें जरासंघ की इच्छा के विरूद्ध कोई भी कार्य करने की स्वतंत्रता है? जरासंघ किसीको भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार नहीं देता। स्वतंत्र चिंतन का अवकाश नहीं है वहां पर। ... जबकि कृष्ण के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बहुत महत्व है। ... राजा या सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा नहीं है उसके मन में। वह यदि कुछ चाहता है तो मात्र इतना ही कि मानवीय उत्पीड़न और अत्याचार समाप्त हो और

प्रकृति के साथ मैत्री कर मनुष्य सुख और चैन से जिए। इसलिए उसने मित्र बनाया है पंचाल-राज द्रुपद को, मत्स्यराज विराट को... और अब वह मित्र बना रहा है तुम्हें, पांडवो को, हस्तिनापुर को। कांपिल्य में राज्य द्रुपद का होगा, विराटनगर में मत्स्यराज विराट का, हस्तिनापुर में कुरुराज युधिष्ठिर का। कृष्ण इनका सम्राट नहीं होगा। कृष्ण कर्मयोगी है, अधिकार-भोगी नहीं।"[76]

उपन्यास के अंत में भीष्म कहते हैं कि – "किंतु आज तक देखा यही गया है कि अनधिकार ही संगठित होता है। अधिकार तो सदा ही एकाकी रह जाता है।"[77] युधिष्ठिर के पूछने पर कि ऐसा क्यों होता है? भीष्म उसके उत्तर में 'अधिकार की सही व्याख्या प्रस्तुत करते हैं – "क्योंकि अधिकार जानता है कि वह स्वामी नहीं, मात्र रक्षक है। मन के लोभ को नियंत्रित कर रक्षक तथा पालक बनना बहुत कठिन होता है पुत्र ! लोभी मन स्वामी बन जाना चाहता है, ताकि वह प्रजा का भोग कर सके।"[78] इसके उत्तर में युधिष्ठिर कहते हैं – "मैं प्रयत्न करूंगा पितामह ! कि मैं 'अधिकार' का वास्तविक रूप ही ग्रहण करूं। मैं प्रजा का रक्षक बनूं। उसकी समृद्धि में अपनी समृद्धि को पहचान प्रजा के सर्वांगीण विकास का मार्ग चुनूं! प्रजा को वंचित कर, अपनी समृद्धि की अट्टालिका का निर्माण न करूं।"[79]

भीष्म और युधिष्ठिर का यह संवाद हमारी साम्प्रतिक राजनीतिक स्थितियों पर करारा व्यंग्य हैं क्योंकि राजनेता 'अधिकार' शब्द की सही व्याख्या ही भूल गए हैं। वस्तुतः वे अधिकार के अधिकारी ही नहीं रह गए हैं।

एक और तथ्य यहां ध्यानार्ह है कि 'अधिकार' के प्रकाशकीय में कहा गया है कि उसकी कहानी हस्तिनापुर में पांडवों के शैशव से आरंभ होकर, वारणावत के अग्निकांड पर जाकर समाप्त होती है। ' परंतु यह सत्य नहीं है। वारणावत के अग्निकांड वाली कथा, इस शृंखला के तीसरे उपन्यास 'कर्म' में आती है।

(3) कर्म (1991):

महासमर के इस तृतीय खण्ड को 'कर्म' शीर्षक दिया गया है जो सर्वथा सार्थक एवं सटीक है। 'अधिकार' के पश्चात् ही 'कर्म' का क्षेत्र शुरू होता है। प्रस्तुत उपन्यास 392 पृष्ठ और 38 अध्यायों में विभक्त हुआ है। उपन्यास का प्रारंभ कृष्ण के हस्तिनापुर से मथुरा के लिए प्रस्थान से होता है और अंत कुरु-राज्य के विभाजन से। 'अधिकार' में बताया गया है कि धृतराष्ट्र भीष्म, विदुर, अक्रूर आदि के राजनीतिक दबावों से युधिष्ठिर का युवराज्याभिषेक तो कर देते हैं, परंतु उनका मन साफ नहीं है। 'अधिकार' के अंत में वे जो उदघोषणाएं करते हैं, उनसे उनकी मंशा का अंदाजा लगाया जा सकता है। वह कुरु-वृद्ध भीष्म के अधिकार द्रोण को देकर युधिष्ठिर की शक्ति को क्षीण करने का प्रयत्न ही नहीं करते, बल्कि द्रोण को अपने पक्ष में करने की चेष्टा भी करते हैं। तभी तो कृष्ण व्यंग्यात्मक भाषा में उसे 'दृष्टिहीन की दूर-दृष्टि' कहते हैं।[80]

परिणामतः युद्धों, दिग्विजयों, राज्य-विस्तार, राजकोष की समृद्धि आदि के नाम पर धृतराष्ट्र पांडवों को हस्तिनापुर से दूर ही दूर रखते हैं ताकि हस्तिनापुर में दुर्योधन की जडें मजबूत होती जाएं, पांडव युद्धों में या तो मर-खप जाएं या उनके शत्रुओं में वृद्धि होती जाय जिससे अंततः फायदा उनके पक्ष का ही हो।

कृष्ण और बलराम के प्रस्थान के साथ ही हस्तिनापुर में षडयंत्रों का दौर शुरू हो जाता है। धृतराष्ट्र की योजना पांडवों को कमजोर करने की थी, परंतु विपरीत इसके वे और मजबूत होते हैं। आर्यावर्त के अन्य राजा भी उनका लोहा मानते हैं। उनका अनृशंसता का सिद्धान्त शत्रुओं के स्थान पर मित्रों में अभि वृद्धि करता है। धृतराष्ट्र और दुर्योधन की चंडाल-चौकड़ी अब समझ गयी है कि पांडवों को ज्यादा समय के दूर नहीं रखा जा सकता। अतः उनका कांटा हमेशा के लिए निकालने के उद्देश्य से वे वारणावत के अग्निकांड की योजना बनाते हैं। धृतराष्ट्र भीष्म और विदुर को यह समझाने में सफल हो जाते हैं कि सदैव युद्धरत पांडवों को थोड़ा विश्राम मिलना चाहिए। सरल हृदय भीष्म को इसमें कोई आपत्ति नज़र नहीं आती।

परंतु विदुर तो एक राजनीतिज्ञ हैं। उनको इसमें षड्यंत्र की बू आती है। अतः जाने से पूर्व वे पांडवों को सचेत कर देते हैं कि वारणावत-यात्रा को वे विहार या विश्राम के रूप में न लें। महल के जीर्णोद्धार के लिए दुर्योधन का विश्वसनीय पुरोचन गया है। जब-जब कौरवों ने अतिरिक्त प्रेम जताया है उसके पीछे उनकी कोई कुचाल ही रही है। अतः उनको अग्नि या जल से खतरा हो सकता है। [81]

अतः पांडव भी चौकन्ने हो जाते हैं। भवन का जीर्णोद्धार नहीं बल्कि उनके लिए नये भवन का निर्माण हुआ है। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि सभी वारणावत के परिवेश को समझने का यत्न करते हैं और उन्हें कौरवों के षड्यंत्र का पक्का विश्वास हो जाता है। इधर विदुर भी शान्त नहीं बेठते हैं। अपने गुप्तचर विभाग से उन्हें ज्ञात हो जाता है कि पांडवों को जलाने के लिए भवन के रूप में पुरोचन ने 'लाक्षागृह' का निर्माण किया है। अतः अपना एक विश्वसनीय खनिक और कुछ श्रमिक वे वारणावत भेज देते हैं। भवन में से एक सुरंग निकाली जाती है, जिससे अग्निकांड की स्थिति में उनका बचाव हो सके।[82]

सुरंग के कारण कुन्ती और पांडवों का बचाव हो जाता है। पुरोचन भी उसमें जलकर मर जाता है। लाक्षागृह में से पॉच पुरुष और एक स्त्री के जले हुए कंकाल मिलते हैं, अतः कौरव मान लेते हैं कि पांडव स्वाहा हो गये। विदुर को सही स्थिति का पता है। वह कृष्ण और व्यास को उसका संकेत दे देते हैं। भीष्म को नहीं बताते, क्योंकि उनकी सरलता के रहते बात के खुल जाने का डर था। धृतराष्ट्र-गांधारी तथा दुर्योधन इत्यादि ऊपर-ऊपर से शोक प्रकट करते हैं, परंतु भीतर से बहुत प्रसन्न हैं।

इसके बाद की घटनाएं संक्षेप में इस प्रकार है – गंगा के पास विदुर द्वारा तैनात नाव से पांडवों का गंगा को पार करना, वहां से हिडिम्ब वन में प्रवेश करना, भीम द्वारा हिडिम्ब नामक राक्षस का वध, हिडिम्ब-भगिनी हिडिम्बा का भीम की और आकृष्ट होना, कुन्ती के सामने राक्षस-विवाह का प्रस्ताव रखना, हिडिम्बा की सेवा और प्रेम भावना को लक्षित करते हुए माता कुन्ती का भीम-हिडिम्बा के

'अस्थायी अनुबंध विवाह' (आज की भाषा में 'Contract Marriage') के लिए राज़ी होना, उन सबका हिडिम्ब वन के समीप शालिहोत्र नामक ऋषि के आश्रम के पास कुटिया बनाकर रहना, भीम और हिडिम्बा की काम-केलियां, फलतः हिडिम्बा को भीम से गर्भ रहना, तभी महर्षि व्यास का अचानक वहां आना, सांकेतिक भाषा में बात करना, महर्षि व्यास का आदेश कि उनको कब और कहां प्रकट होना है उसकी सूचना न मिले तब तक ऐसे ही छिपकर रहना है, एक साल के उपरान्त हिडिम्बा द्वारा एक शिशु को जन्म देना, घट जैसा मस्तिष्क होने के कारण 'घटोत्कच' के रूप में युधिष्ठिर द्वारा नामकरण,[83] अनुबंध के अनुसार हिडिम्बा का शिशु को लेकर दूर निकल जाना लेकिन भीम से वचन ले लेना कि आवश्यकता पड़ने पर वह उसका स्मरण अवश्य करेगा, बदले में भीम भी हिडिम्बा को प्रतिज्ञाबद्ध करता है कि वह उसके पुत्र का पालन-पोषण एक क्षत्रिय राजकुमार के रूप में करेगी न कि एक राक्षस के रूप में, महर्षि व्यास के संकेत पर पांडवों का एकचक्रानगरी में देवप्रकाश नामक ब्राह्मण के यहां ठहरना, बकासुर नामक राक्षस का वध, तभी व्यासजी की दूसरी सूचना मिलना कि उन्हें द्रौपदी के स्वयंवर में ब्राह्मणवेश में शामिल होना है, व्यासजी का अपने शिष्य धौम्य ऋषि द्वारा मत्स्य-वेधन की योजना तैयार करवाना, पांडवों का कांपिल्य के लिए प्रस्थान, रास्ते में अंगारपर्ण नामक गांधर्व के गर्व का गलन करना, व्यासजी की ही सूचना से पांडवों का धर्मरक्षित नामक कुंभकार के यहां ठहरना, दौपदी के भाई धृष्टद्युम्न द्वारा द्रौपदी को वीर्यशुल्का घोषित करना, पराक्रम-प्रदर्शन की शर्तों में मत्स्य-वेधन के उपरान्त कुलीनता की शर्त भी रखना, मन्स्य-वेधन में अनेक राजाओं का असफल होना, अतंतः कर्ण का आगे बढ़ना किन्तु द्रौपदी द्वारा सूतपुत्र कहकर उसे अपमानित करना, अंत में ब्राह्मणों के मंडप से ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन का आना, मत्स्य-वेधन में सफल होना, अन्य क्षत्रिय राजाओं द्वारा अर्जुन पर आक्रमण, भीम और अर्जुन का अतुलनीय पराक्रम, भीम द्वारा द्रौपदी को बचाकर धर्मरक्षित के यहां पहुंच जाना, परिवेदन की समस्या,[84] पांचों भाइयों से विवाह के लिए प्रथमतः द्रुपद का विरोध, अंततः कृष्ण द्वारा द्रुपद को समझा देना, सातों का

हस्तिनापुर पहुंचना, भीष्म को सही वस्तुस्थिति से अभिज्ञ करना, उनकी प्रसन्नता, धृतराष्ट्र-गांधारी द्वारा प्रेम-प्रदर्शन का नाटक।[85] पांडवों की इस कथा के समानांतर ही कृष्ण और यादवों की कथा चलती है। स्यमंतकमणि के कारण सत्यभामा के पिता सत्राजित का वध शतधन्वा कर देता है। सत्यभामा कृष्ण की प्रेयसी एवं पत्नी है, अतः सत्राजित का वध एक प्रकार से कृष्ण पर ही प्रहार था, फलतः कृष्ण और बलराम शतधन्वा का पीछा करते-करते मिथिला प्रदेश तक पहुंच जाते हैं। वहां निरूपाय होकर कृष्ण शतधन्वा का वध सुदर्शन चक्र द्वारा कर देते हैं, फिर भी उनको स्यमंतकमणि तो नहीं ही मिलता है। कृष्ण शतधन्वा का वध बलराम की अनुपस्थिति में करते हैं। फलतः बलराम के मन में संशय का बीज पड़ जाता है कि कृष्ण को शतधन्वा से स्यमंतक मिला होगा और कृष्ण ने उसे कहीं छिपा दिया है। परिणामस्वरूप उन दोनों के मन में कहीं दरार पड़ जाती है जो क्रमशः बढ़ती ही जाती है। महाभारत में हम देखते हैं कि बलराम सदैव दुर्योधन का ही पक्ष लेते हैं। अंततः कृष्ण स्यमंतक मणि को ढूंढकर उसे अक्रूर के हवाले कर देते हैं। इधर बढ़ते वैभव-विलास एवं शक्ति के कारण यादव विलासी होते चले जाते हैं जिसके कारण कृष्ण निराश और दुःखी हो जाते हैं। ये तमाम घटनाएं मूल आधिकारिक कथा के साथ-साथ उपन्यस्त हुई हैं।

पांडवों के पुनरागमन पर धृतराष्ट्र और गांधारी तो प्रसन्नता का नाटक करते हैं, परंतु पांडवों को मृत समझ कर दुर्योधन को युवराज घोषित किया गया था और अब वह उस पद से हठना नहीं चाह रहा था, फलतः दिल पर पत्थर रख कर भीष्म पितामह को कुरु-राज्य के विभाजन का आदेश देना पड़ता है, परंतु मारे क्रोध के वे विभाजन के समय सभा से बाहर चले जाते हैं। उनकी अनुपस्थिति का फायदा उठाते हुए धृतराष्ट्र अपनी धूर्त-नीति खेल ही जाता है। कौरवों को बसा-बसाया, समृद्ध व संपन्न हस्तिनापुर का राज्य मिलता है और पांडवों को मिलता है खांडव वन (खांडवप्रस्थ), जहां महल के नाम पर एक खंडहर है और आसपास है घना जंगल। नाग, हिंसक पशु और दुनिया भर के दस्यू और छटे हुए बदमाशों का वह अड्डा

था। 'अधिकार' के अंत में भीष्म जहां संतुष्ट और आप्तकाम थे, 'कर्म' के अंत में हम उन्हें दुःखी, निराश और संत्रस्त अवस्था में पाते हैं, क्योंकि फिर एकबार बुराई के हाथों अच्छाई की पराजय हुई थी। उपन्यास के अंतिम वाक्य हैं – "पुत्र युधिष्ठिर ! मैं तुम्हें कभी तुम्हारा अधिकार नहीं दिलवा सका।" वे अपनी कल्पना में खड़े युधिष्ठिर से बोले, "तुम्हें हस्तिनापुर में कभी न्याय नहीं मिला।" ... और सहसा उन्हें लगा, उनका मन सोच-सोच कर अत्यन्त भयभीत हो रहा है कि जाने से पहले कुन्ती और द्रौपदी के साथ पांडव उनसे बिदा लेने आयेंगे तो वे उनका सामना कैसे करेंगे ! ..." [86]

(4) धर्म (1993) :

महाभारत-शृंखला का चतुर्थ उपन्यास 'महासमर-4' को 'धर्म' नाम दिया गया है। उसकी कथा 39 अध्याय और 415 पृष्ठों में उपन्यस्त हुई है। पांडवों के खांडववन के प्रस्थान से कथा शुरू होती है और द्यूत-सभा प्रसंग पर उसकी समाप्ति होती है।

पांडवों को राज्य के रूप में खांडवप्रस्थ मिला है, जहां न कृषि है, न व्यापार। सम्पूर्ण क्षेत्र अराजकता की जीती-जागती मिसाल है। अपराधियों और महाशक्तियों की वाहिनियां अपने षड्यंत्रों में लगी हुई है और खांडववन उनका कवच बना हुआ है। आश्चर्य तो इस बात का होता है कि इस कवच की रक्षा स्वयं इन्द्र कर रहे हैं। युधिष्ठिर के सम्मुख धर्म-संकट है। वह नृशंस नहीं होना चाहता; किन्तु अनृशंसता से प्रजा की रक्षा भी तो नहीं हो सकती पांडवों के पास इतने साधन भी नहीं है कि वे इस इन्द्र-रक्षित खांडववन को नष्ट कर, उसमें छिपे अपराधियों को दंडित कर सकें।

उधर अर्जुन के सम्मुख अपना धर्म-संकट है। उसे राज-धर्म का पालन करने के लिए उनके बीच हुए अनुबंध को तोड़ना पड़ता है। (पांडवों के बीच यह शर्त थी कि जब कोई भाई द्रौपदी के कक्ष में होगा तो उस समय दूसरा कोई भी भाई उसमें प्रवेश नहीं करेगा, और नियम भंग करने पर उसे बारह साल वनवास भोगना होगा) फलतः उसे बारह साल का वनवास स्वीकारना पड़ता है। किन्तु इन बारह

वर्षों में अर्जुन न पूर्णतया ब्रह्मचर्य का पालन करता है न पूर्णतः वनवासी ही रहता है। इस बीच वह उलूपी, चित्रांगदा और सुभद्रा से विवाह करता है। क्या उसने अपने धर्म का निर्वाह किया? और धर्म को कृष्ण से बेहतर कौन जानता है? सुभद्रा को अर्जुन के साथ भगाने की योजना तो उनकी ही थी।

कृष्ण और अर्जुन अग्नि से मिलकर खांडव वन को नष्ट कर देते हैं। क्या यह धर्म था? इस अधर्म की अनुमति अनृशंसता-प्रेमी युधिष्ठिर ने कैसे दी? और फिर राजसूय यज्ञ! क्या आवश्यकता थी उस यज्ञ की? जरासंघ जैसा पराक्रमी राजा भीम के हाथों कैसे मारा गया? और उसका पुत्र क्यों खड़ा देखता रहा? अंत में हस्तिनापुर की द्यूत-सभा! धर्मराज होकर युधिष्ठिर ने क्यों खेला द्यूत? उसे स्वयं हारने के पश्चात् अपने भाइयों और द्रौपदी को हारने का क्या अधिकार था? यहां वे किस धर्म का निर्वाह कर रहे थे? भीष्म आदि गुरुजन चूप क्यों रहे? द्रौपदी की रक्षा कैसे हुई? उदार-चरित्र कर्ण क्यों चूप रहा? कृष्ण उस सभा में किस रूप में उपस्थित थे?

"ऐसे ही अनेक प्रश्नों के मध्य से होकर गुजरती है 'धर्म' की कथा। यह उपन्यास न केवल इन समस्याओं की गुत्थियों को सुलझाता है। उस युग का, उस युग के चरित्रों का तथा उनके धर्म का विश्लेषण भी करता है। हम आश्वस्त हैं कि इस उपन्यास को पढ़कर 'महाभारत' ही नहीं, धर्म के प्रति भी, आपका दृष्टिकोण कुछ विशद होकर रहेगा। और फिर भी यह एक समकालीन मौलिक उपन्यास है, जिसमें आपके समसामयिक समाज की धड़कनें पूरी तरह से विद्यमान हैं।"[87]

पांडव अपनी शक्ति, बुद्धि और कौशल से खांडववन से इन्द्रप्रस्थ बना देते हैं। 'खांडवप्रस्थ' को 'इन्द्रप्रस्थ' नाम व्यासजी देते हैं। इन्द्र के क्रोध को शान्त करने की युक्ति भी उसमें निहित है। दूसरे अर्जुन इन्द्र का ही नियोग-पुत्र है। अतः अर्जुन द्वारा यह कार्य संपन्न होने पर इन्द्र का कोप वैसे ही शान्त हो सकता है।[88]

इन्द्रप्रस्थ के बस जाने पर नारदजी वहां जाते हैं। वे द्रौपदी के संदर्भ में पूछते हैं कि पाँच पतियों के साथ वह कैसे निर्वाह कर पाती है और फिर उनकी समस्या को सुलझाने के लिए व्यवस्था देते हैं कि द्रौपदी एक-एक वर्ष के लिए बारी-बारी से अपने अलग-अलग पतियों के साथ रहे और उस समय में कोई दूसरा भाई द्रौपदी के कक्ष में न जाए और इस अनुबंध के भंग होने पर उसे बारह वर्ष ब्रह्मचर्य पालन के साथ वनवास करना होगा। अतः शेष समय के लिए सभी पांडव दूसरे विवाह कर सकते हैं। इस प्रकार यहां दोनों प्रकार के विवाह की बात भी सामने आती है – बहुपतित्व (Polyandry) और बहुपत्नीत्व (Polygamy)। [89]

कुछ दस्यू एक ब्राह्मण के गोधन को चुराकर भाग रहे थे, तब उसकी सहायता के लिए अर्जुन को अपने द्वारा स्थापित शस्त्रागार में जाना पड़ता है। उस समय वहां एकांतवास में युधिष्ठिर तथा द्रौपदी थे, अतः अर्जुन द्वारा उस एकांत-भंग का नियम टूटता है।[90] अतः अनुबंध-निर्वाह के लिए अर्जुन बारह साल के वनवास के लिए निकल पड़ता है। परंतु ब्रह्मचर्य वाले नियम का वह पालन नहीं कर पाता। जब वह हरद्वार पहुंचता है तब नागराज कौरव्य की पुत्री उलूपी के अस्थायी पतित्व के प्रस्ताव को स्वीकार करना पड़ता है। 91 अपनी उसी यात्रा में अर्जुन जब मणिपुर पहुंचता है तो वहां के राजा चित्रवाहन की सहायता करता है। वहां राजकुमारी चित्रांगदा से उसका विवाह होता है और उससे बभ्रुवाहन नामक एक पुत्र होता है।[92] जब बारह वर्ष की अवधि पूरी होने वाली होती है तब अर्जुन प्रभास-क्षेत्र में आता है। वहां कृष्ण-बलराम की भगिनी सुभद्रा की और वह आकार्षित होता है। तब कृष्ण की अनुमति से वह सुभद्रा का हरण करता है।93 बलराम-कृतवर्मा आदि क्रोधित होते है, पर अन्ततः कृष्ण इनको शान्त कर देते हैं।

इसके बाद की प्रमुख घटनाओं में बारह साल की अवधि के समाप्त होने पर अर्जुन-सुभद्रा का इन्द्रप्रस्थ पहुंचना, यादवों का भी श्रीकृष्ण के साथ वहां पहूंचना, इन्द्रप्रस्थ के विकास की योजनाओं पर विचार करना, उस कार्य में अग्नि की प्रत्यक्ष और वरुण की प्रच्छन्न

सहायता, तक्षक नाग का वहां से भागना, इन्द्र और वरुण का प्रसन्न होना, अर्जुन को अग्निदेव द्वारा गांडीव धनुष्य तथा दिव्यरथ की प्राप्ति होती है, कृष्ण को अग्नि द्वारा सुदर्शन चक्र तथा वरुण की ओर से कौमोदकी नामक गदा का प्राप्त होना;[94] (यहां पर डॉ. कोहली से एक तथ्यमूलक (Factual) क्षति हुई है, पिछले उपन्यास में हमने पढ़ा कि कृष्ण शतधन्वा का वध सुदर्शन चक्र से करते हैं।)[95] खांडववन दहन से इन्द्र का कुपित होना तो दूर ऊपर से अर्जुन को दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों को प्रदान करने का वचन देना, मयदानव नामक अद्वितीय वास्तुकार का मिलना, उसके द्वारा इन्द्रप्रस्थ में 'स्फटिक-भवन' का निर्माण, कृष्ण द्वारा भीम की सहायता से जरासंघ वध करवा कर उसके स्थान पर उसके पुत्र सहदेव का राज्याभिषेक करवाना, जरासंघ-वध के उपरान्त कृष्ण का युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ के लिए तैयार करना, जरासंघ की कैद से सौ राजाओं की मुक्ति, अनके राजाओं का पांडवों के आधिपत्य में आना, राजसूय यज्ञ का प्रारंभ, इस यज्ञ हेतु भीष्म पितामह द्वारा व्यवस्था देना (जैसे यज्ञ में तंत्र-स्वामी के रूप में गुरु द्रोण की नियुक्ति, महर्षि व्यास की यज्ञ में ब्रह्मा के रूप में स्थापना, धनंजय गोत्री ऋषि सुसामा उदगाता, अध्वर्यु के रूप में ऋषि याज्ञवल्क्य, होता के रूप में ऋषि धौम्य और पैल आदि)[96]; इसी क्रम में भीष्म अग्रपूजा के लिए कृष्ण का नाम प्रस्तावित करते हैं जिस पर शिशुपाल का भड़क कर अनर्गल प्रलाप और कृष्ण को गाली-गलौच, अनर्गल-प्रलाप की अति पर कृष्ण द्वारा सुदर्शन चक्र के प्रयोग से शिशुपाल का वध, वहीं तत्काल शिशुपाल के पुत्र धृष्टकेतु का चेदि-नरेश के रूप में राज्याभीषेक तथा शिशुपाल की अंत्येष्टि संपन्न करना;[97] राजूसय यज्ञ का संपन्न होना आदि की परिगणना कर सकते हैं।

यज्ञ के उपरांत दुर्योधन आदि 'स्फटिक-भवन' देखने जाते हैं। वहां दृष्टि-भ्रान्ति (Illusion) के कारण पानी में गिर जाता है। इस प्रसंग का प्रतिशोध भी डा. कोहली ने किया है। मूल कथा में जहां द्रौपदी द्वारा कहलवाया है कि 'अंधे का पुत्र भी अंधा', वहां यहां पर भीम केवल व्यंग्यात्मक भाषा में दुर्योधन को 'धृतराष्ट्र-पुत्र'[98] कहता

है। दुर्योधन और शकुनि इस पूरे प्रसंग को धृतराष्ट्र के सम्मुख बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करते हैं, जिससे धृतराष्ट्र द्यूतसभा के लिए राज़ी हो जाते हैं।

इसके बाद महाभारत का वह प्रसंग आता है जिसके कारण संस्कृति का दम भरने वाले सभी के मस्तिष्क शर्मसार हो सकते हैं – द्यूतसभा में धर्मराज युधिष्ठिर का सर्वस्व दांव पर लगा देना। किन्तु जाने-अनजाने धर्मराज स्वयं को दांव पर लगाने के पश्चात् अपने भाइयों तथा द्रौपदी को दांव पर लगाते हैं। इसी युक्ति के द्वारा बाद में द्रौपदी सबको निरूत्तर कर देती है कि एक हारा हुआ आदमी बाद में दूसरों को कैसे दांव पर लगा सकता है?[99]

द्रौपदी-चीरहरण प्रसंग को भी डॉ. कोहली ने अन्य तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया है। रजस्वला एकवस्त्रा द्रौपदी को दुःशासन जब निर्वस्त्र करने का यत्न करता है तब अचानक द्रौपदी अपने सखा कृष्ण को पुकारती है। कृष्ण का नाम आते ही दुःशासन जड़ीभूत हो जाता है। उसके सामने शिशुपाल-वध का दृश्य तादृश हो जाता है और वह मारे भय से कांपने लगता है।[100]

उसके बाद भीम की प्रतिज्ञाओं वाला प्रसंग आता है। उससे गांधारी बुरी तरह से डर जाती है और वह सभा में आती है। परंतु धृतराष्ट्र यहां भी अपनी धूर्त-नीति का प्रयोग करता है। पांडवों की दासता को समाप्त करने के लिए वह बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की व्यवस्था देता है।[101]

उपन्यास में लेपक अक्षय की कथा भी आयी है। वह एक सामान्य लेपक (श्रमिक) से वास्तुकार हो गया है। वर्ण-व्यवस्था के हिसाब से शूद्र से ब्राह्मण हो गया है। फलतः अपने वर्ण के संदर्भ में उसके मन में द्विधाजन्य मनःस्थिति का निर्माण होता है यह ऊहापोह इसलिए भी है कि अक्षय एक श्रेष्ठी-कन्या से प्रेम करता है, वह कन्या भी उससे प्रेम करती है और वह उससे विवाह करना चाहता है। इस संदर्भ में धौम्य ऋषि तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था का विश्लेषण और व्याख्या करते हैं। कर्म से वर्ण की स्थिति सैद्धान्तिक रूप में

उदारमना ऋषियों और विद्वानों को स्वीकार्य थी, परन्तु व्यवहार में तो जन्म से वर्ण की स्थिति दृढ़मूल हो गयी थी। अक्षय के ब्याज से ही यहां अनुलोम-विवाह और प्रतिलोम-विवाह की चर्चा भी हुई है। जहां स्त्री निम्न-जाति की और पुरुष उच्च जाति का हो वहां उसे अनुलोम-विवाह कहते थे जो शास्त्र-सम्मत था; परन्तु इसके विपरीत जहां स्त्री उच्च जाति की हो और पुरुष निम्न जाति का हो उसे प्रतिलोम-विवाह कहते थे जो शास्त्र-सम्मत नहीं था। इस तरह यहां कर्म से वर्ण को गिना जाय तो अक्षय और उस श्रेष्ठी कन्या का विवाह अनुलोम होगा और जन्म से वर्ण की स्थिति में वह प्रतिलोम होगा।[102]

खांडववन के संदर्भ में भीम-युधिष्ठिर-संवाद में महाशक्तियों के दोहरेपन (Double standard) के प्रश्न को उठाया गया है। युधिष्ठिर भीमसे कहते हैं कि "हम अभी इन महान देव-शक्तियों को भली प्रकार समझ नहीं पाए हैं। एक ओर इन्द्र हमारा मित्र बनता है और वह हमारे ही राज्य में हमारे शत्रुओं को अभय दिए हुए हैं। ये महाशक्तियां मित्रों के राज्यों में शत्रुओं का, और शत्रुओं के राज्यों में मित्रों का पोषण क्यों करती है यह समझना बड़ा कठिन हो रहा है।"[103] यहां भारत-पाकिस्तान के संदर्भ में अमरिका के दोहरेपन को समझा जा सकता है। मौत के ये सौदागार अपने शस्त्रों के कारोबार को चलाने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं और इसी प्रकार के प्रश्नों को उठाकर डॉ. कोहली अपने पौराणिक उपन्यासों की समकालीनता को तर्कतः प्रस्थापित करते हैं।

(5) अंतराल (1995) :

महाभारत कथामाला का पांचवां उपन्यास 'अंतराल' 32 अध्याय और 368 पृष्ठों में उपन्यस्त है। इस खंड में द्यूत में पराजय के उपरान्त पांडव वनवास के लिए निकल पड़ते हैं। इस यात्रा में कुन्ती उनके साथ नहीं है। पांडवों की द्रौपदी के अतिरिक्त पाँच पत्नियां – देवकी, बलंधरा, सुभद्रा, करेणुमति और विजया – भी इनके साथ नहीं थीं। वे अपने अपने बच्चों के साथ अपने मायके चली

जाती हैं। किन्तु द्रौपदी कांपिल्य नहीं जाती। वह अपने पतियों के साथ वनवास जाना पसंद करती हैं।

राजनीतिक समीकरण भी इधर कुछ बदल जाते हैं। कृष्ण यादव-सेना के बल पर पांडवों का राज्य कौरवों से छिनकर उनको लौटाना चाहते थे, किन्तु वे ऐसा नहीं कर सके। सहसा ऐसा क्या हो गया कि बलराम के लिए धृतराष्ट्र तथा पांडव समान हो गये? और दुर्योधन को यह अधिकार मिल गया कि वह कृष्ण से सैनिक सहायता मांग सकें? और कृष्ण उसे मना भी न कर सकें? इतने शक्तिशाली सहायक होते हुए भी युधिष्ठिर क्यों भयभीत थे? वे अर्जुन को दिव्यास्त्रों की प्राप्ति हेतु इन्द्र के पास स्वर्ग में क्यों भेजते हैं? क्या अर्जुन को साक्षात् महादेव के दर्शन हुए थे? अपनी पिछली त्रयी में तीन-तीन विवाह करने वाले अर्जुन के साथ ऐसा तो क्या हुआ कि उसने उर्वशी के काम-निवेदन का तिरस्कार कर दिया? इस प्रकार के अनेक प्रश्नों के उत्तर तर्कसम्मत ढंग से यहां प्रस्तुत है। यादवों की राजनीति, पांडवों का धर्म के प्रति आग्रह तथा दुर्योधन की मदान्धता सम्बन्धी यह रचना पाठक के सम्मुख, इस प्रख्यात कथा के अनेक नवीन आयाम उद्घाटित करती है।[104]

धृतराष्ट्र के आदेशानुसार पांडव तथा द्रौपदी वनवास तथा अज्ञातवास के लिए निकल पड़ते हैं। कृष्ण तथा धृष्टद्युम्न आदि युधिष्ठिर को समझाने का बहुत प्रयत्न करते हैं, पर धर्मराज है कि अपने निर्णय से टस से मस नहीं होते। वे स्पष्टतया कह देते हैं – "मैंने द्यूतसभा में बारह वर्षों के वनवास और एक साल के अज्ञातवास का वचन दिया है। मेरी इच्छा है कि मुझे अपने इस धर्म का पालन करने दिया जाय। इस समय हम दुर्योधन से युद्ध की योजना न बनाएं।"[105]

उपन्यास का शीर्षक 'अंतराल' इस बात को द्योतित करता है कि यहां पांडवों और कौरवों के बीच में कोई प्रत्यक्ष संघर्ष नहीं है। बारह साल के पांडवों के वनवास से कौरव निश्चिंत हैं। अज्ञातवास में उनको पुनः ढूंढकर फिर से बारह साल के लिए भेज देंगे। इस तरह वनवासी पांडव सदैव वनवासी ही रहेगे, यह उनकी कूटनीति है।

किन्तु पांडव इस अंतराल या विराम का उपयोग अपनी शक्ति, साधना, ध्यान-भक्ति को बढ़ाने में करते हैं। हिमालय के प्रदेशों में ऊपर तक जाकर अर्जुन अंततः इन्द्र से भेंट करने में सफल हो जाता है और वह उनसे न केवल अनेक दिव्यास्त्र और देवास्त्र प्राप्त करता है, बल्कि उन दिव्यास्त्रों के पुनर्निर्माण की विधि को भी सीख लेता है। भीम तथा अन्य पांडव भी अपने-अपने क्षेत्र में शक्तिवर्द्धन का कार्य करते हैं। द्रौपदी को छोड़कर अन्य रानियां नहीं जाती हैं उसके पीछे उनका उद्देश्य राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा का है। उन्हें क्षत्रियोचित शस्त्रास्त्रों में प्रशिक्षित किया जाता है।

उपन्यास की प्रमुख घटनाएं इस प्रकार हैं – पांडवों के प्रति विदुर की सहानुभूति को लक्ष्य कर धृतराष्ट्र का उन्हें निकाल देना, महर्षि व्यास के समझाने पर विदुर का हस्तिनापुर लौट आना, धृतराष्ट्र को समझाना, धृष्टद्युम्न का पांचाली को मिलने आना और द्रौपदी के पुत्रों को लेकर कांपिल्य जाना, कृष्ण द्वारा द्रौपदी को आश्वासन देना कि कौरव दंडित होंगे, व्यास का पांडवों से मिलकर यह प्रस्ताव रखना कि अर्जुन को देवलोक में वैजयन्त इन्द्र के पास दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों के लिए भेजा जाय;[106] देवलोक के लिए अर्जुन का प्रस्थान, अर्जुन का वैजयन्त इन्द्र से मिलना, इन्द्र का अर्जुन को परामर्श कि पहले वह महादेव को प्रसन्न कर उनसे पाशुपतास्त्र प्राप्त करे,[107] अर्जुन की परीक्षा लेने के लिए महादेव का किरात रूप धारण करना, अर्जुन का उससे युद्ध करना, अर्जुन के पराक्रम से महादेव का प्रसन्न होना, अर्जुन को पाशुपतास्त्र देना, महादेव की कृपा से यमराज द्वारा दंडास्त्र, वरूण द्वारा वरुणपाश, कुबेर द्वारा अन्तर्धान नामक अस्त्र को प्राप्त करना;[108] यहां इन्द्र विषयक एक मिथ का टूटना कि इन्द्र कोई व्यक्तिवाचक पद नहीं है, पर अलग-अलग समय में देवताओं में से इन्द्र का वरण होता है। अर्जुन जिस इन्द्र को मिलता है वह वैजयन्त इन्द्र है।

उधर महर्षि बृहदश्व से युधिष्ठिर, द्यूतविद्या तथा अश्वविद्या को सिखते हैं ताकि वह दुखदायी इतिहास कभी दुहराया न जाय।[109] ऋशि लोमस द्वारा अन्य पांडवों को अर्जुन के समाचार मिलते हैं।

इसके बाद की घटनाओं में निम्नलिखित मुख्य है – दुर्योधन-तनया लक्ष्मणा का स्वयंवर, उसके पीछे दुर्योधन की कूटनीति, उसे सुनकर धृतराष्ट्र का प्रसन्न होना, यादवों को उस स्वयंवर में आमंत्रित न करना, साम्ब (कृष्ण जाम्बवती पुत्र) द्वारा लक्ष्मणा का हरण;[110] साम्ब का पकड़ा जाना, दुर्योधन द्वारा उसको कारावास में डाल देना, कृष्ण की हस्तिनापुर पर आक्रमण की तैयारी, बलराम द्वारा कृष्ण को समझाना कि वह साम्ब तथा लक्ष्मणा को अपने साथ ले आयेंगे, दुर्योधन की कूटनीति, बलराम की उदारता व भोलेपन का लाभ लेते हुए उनको वचनों में बाँध देना कि पांडव-कौरवों के भविष्यत् युद्ध में वे तथा उनके कुल के सभी सदस्य तटस्थ रहेंगे।[111]

उधर अमरावती में अर्जुन गांधर्व चित्रसेन से नृत्यकला भी सिखता है। वैजयन्त इन्द्र उर्वशी को समझाते है कि रतिदान की भावना लेकर अर्जुन के समक्ष उपस्थित हो, परंतु अर्जुन उर्वशी को मातृदृष्टि से देखता है क्योंकि उर्वशी कभी कुरुवंश के पूर्वज पुरुरवा की प्रेयसी रही थी।[112] परिणामतः उर्वशी अर्जुन से रुष्ट होकर उसे नपुंसक, पुंसत्वहीन और क्लीव आदि कहकर फ़टकारती है।

पांडव अर्जुन को मिलने के लिए उत्तर की और बढ़ते है। इस क्रम में वे घटोत्कच को मिलते हैं। द्रौपदी घटोत्कच से मिलकर उसकी माता हिडिम्बा के विचार जानने की चेष्टा करती है। घटोत्कच की बातों से द्रौपदी अत्यन्त प्रभावित होती है। उसके बाद भीम-हनुमान साक्षात्कार वाले प्रसंग को डॉ. कोहली ने स्वप्न के माध्यम से बताया है।[113] उसके बाद की कुछ घटनाएं इस प्रकार हैं—जटासुर द्वारा द्रौपदी के अपहरण का प्रयास, भीम द्वारा जटासुर का वध, इसी क्रम में भीम जटासुर के सेनापति मणिमान का भी वध करता है, इससे कुबेर का क्रोधित होना किन्तु कारण जानने पर प्रसन्न होना कि भीम ने पति-धर्म के निर्वाह के लिए वैसा किया था।[114]

अर्जुन देवलोक से लौट आता है। अर्जुन के कार्यों से पांड्व अतीव प्रसन्न होते हैं क्योंकि अर्जुन न केवल दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों को लेकर लौटा था, बल्कि उनके निर्माण और परिचालन की विधि को भी सीख आया था। अर्जुन और द्रौपदी में कुछ हास-परिहास भी

होता है। कृष्ण भी अज्ञातवास के पूर्व पांडवों से मिलने आते हैं। सत्यभामा और द्रौपदी के बीच में खूब बातें होती हैं। उनमें वह प्रसंग भी है जिसमें सत्यभामा द्रौपदी से पूछती है कि वह पांच-पॉच पतियों को कैसे प्रसन्न रख सकती है? उसके उत्तर में द्रौपदी कहती है—"प्रेम देकर, सेवा करके, उन पांचों के साथ छठी बनकर! मैं उनसे पृथक नहीं हूं कि उनसे कुछ मांगूं। जो कुछ उनका है, वह सब मेरा है। जो मेरा है वह सब उनका है। सुख-दुःख, भाव-अभाव, संपत्ति-विपत्ति सबकुछ।"[115] इसी तरह नारद-अर्जुन प्रसंग में नारद पर्यावरण के संतुलन की बाते करते हैं और दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों के प्रयोग में भी विवेक एवं न्याय से काम लेने की सलाह देते हैं कि केवल अनिवार्य स्थितियों में ही उनका प्रयोग किया जाय।[116]

यहां महाभारत के सभी प्रमुख चरित्रों में प्रौढ़त्व आया है। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, द्रौपदी आदि सभी में कुछ वैचारिक परिपक्वता के दर्शन होते हैं। अर्जुन अब पहले वाला नहीं रहा। अन्यथा अपनी देवलोक यात्रा में वह और कुछ पत्नियों को बटोर लाता। यहां तक कि देव-अप्सरा, ब्रह्मांड-सुंदरी उर्वशी को भी अब वह मातृभाव से देखने लगा है। द्रौपदी भी युधिष्ठर को अब समझने लगी है और चिढ़ने के बदले उनका सम्मान करने लगी है। यह 'अंतराल' जहां पांडवों को और संयमी और शक्तिशाली बनाता है, वहां कौरवों को और अधिक उद्धत और उच्छृंखल बनाता है।

(6) प्रच्छन्न (1997) :

महाभारत कथा-शृंखला का छठा उपन्यास प्रच्छन्न' साठ अध्याय और छ सौ अठारह पृष्ठों में उपन्यस्त हुआ है। 'अंतराल' के अंत में बताया गया है कि पांडवों का बारह साल का वनवास अब पूरा हुआ है और एक साल का अज्ञातवास शुरु होनेवाला है। 'प्रच्छन्न' उपन्यास में तीस अध्यायों की कथा अज्ञातवास पूर्व की है। उसमें पांडवों के कुछ दिनों या महीनों की कथा है, जिसमें वे अपने अज्ञातवास को सफ़ल बनाने की युक्ति-प्रयुक्ति पर विचार करते हैं। दूसरे तीस अध्यायों में उनके अज्ञातवास की कथा है। 'प्रच्छन्न' शब्द के तीन अर्थ 'नालंदा विशाल शब्दसागर' में दिए गए हैं—लपेटा या

ढंका हुआ, परिवेष्टित और छिपा हुआ।[117] पांडवों को एक साल स्वयं को परिवेष्टित करते हुए प्रच्छन्न रूप से छिपकर रहना है, यही बात उसमें द्योतित होती है। उसके बाद का उपन्यास है—'प्रत्यक्ष'। 'प्रच्छन्न' उसका विलोम है। परंतु यह तो उसका स्थूल अर्थ हुआ। उसके सूक्ष्म प्रतीकात्मक अर्थ भी है जिसकी ओर प्रकाशकीय में संकेतित किया गया है—

"बाह्य संसार के सारे घटनात्मक संघर्ष वस्तुतः मन के सूक्ष्म विकारों के स्थूल रूपान्तरण मात्र है। अपनी मर्यादा का अतिक्रमण कर जाएं, तो ये मनोविकार, मानसिक विकृतियों में परिणित हो जाते हैं। दुर्योधन इसी प्रक्रिया का शिकार हुआ है। अपनी आवश्यकता भर पाकर वह संतुष्ट नहीं हुआ। दूसरों का सर्वस्व छिनकर भी वह शांत नहीं हुआ। पांडवों की पीड़ा उसके सुख की अनिवार्य शर्त थी। इसलिए वंचित पांडवों को पीड़ित और अपमानित कर सुख प्राप्त करने की योजना बनाई गई। घायल पक्षी को तड़पाकर बच्चों को क्रीड़ा का-सा आनंद आता है। मिहिरकुल को अपने युद्धक गजों को पर्वत से खाई में गिराकर उनके पीड़ित चीत्कारों को सुनकर असाधारण सुख मिला था। अरब शेखों को ऊंटों की दौड़ में, उनकी पीठ पर बैठे बच्चों की अस्थियां टूटने और पीड़ा से चिल्लाने को देखकर सुख मिलता है। महासमर-6 में मनुष्य का मन अपने ऐसे ही प्रच्छन्न भाव उदघाटित कर रहा है"।[118]

'प्रच्छन्न' शब्द का प्रयोग उपन्यास में दुर्वासा-प्रसंग में भी हुआ है। यथा—"युधिष्ठिर के मन में कण भर भी जो विश्वास था के दुर्वासा, ऋषि होकर, पांडवों के साथ किसी प्रकार का छल-छद्म नहीं कर सकते—समाप्त हो गया। निश्चित रूप से वे दुर्योधन की इच्छा के अनुसार कार्य कर रहे थे, वरन् इस समय तो वे उसके उपकरण ही बने हुए थे। वे दुर्योधन की गदा के रूप में, पांडवों पर प्रहार करने आ रहे थे। वे जान बूझकर उस समय आ रहे थे, जब उनकी रसोई, भोजन के पश्चात् लीप-पोतकर स्वच्छ कर दी गई थी। वे इतने लोगों को अपने साथ ला रहे थे कि अकेली द्रौपदी ही क्यों, आश्रम का प्रत्येक अंतेवासी भी यदि भोजन तैयार करने में लग जाए, तो दिन

भर लगा कर भी, उतने लोगों का भोजन तैयार न किया जा सके। ठीक कहते हैं अर्जुन और भीम। यह एक ऋषि का किसी सदगृहस्थ के द्वार पर जाना नहीं है, यह तो पांडवों पर दुर्योधन का प्रच्छन्न आक्रमण ही है। इसके विरुद्ध तो पांड्व की और से भी सैनिक अभियान ही होना चाहिए। ... किन्तु क्रोध युधिष्ठिर के स्वभाव में नहीं था। वे तो अब तक सबकुछ ईश्वर पर ही छोड़ चुके थे। ईश्वर की इच्छा पूरी हो"। [119] जिस प्रकार कृष्ण ने द्यूतसभा में द्रौपदी को बेइज्जत होने से बचाया था, यहाँ भी कृष्ण दुर्वासा को न जाने क्यां कहते हैं कि वे पांडवों के आश्रम में जाते ही नहीं है।

'प्रच्छन्न' की कथा के संदर्भ में प्रकाशकीय में ही सांकेतिक भाषा में कहा गया है – "पांडवों का अज्ञातवास, महाभारत – कथा का एक बहुत ही आकर्षक स्थल है। दुर्योधन की गृध दृष्टि से पांडव कैसे छिपे रह सके ? अपने अज्ञातवास के लिए पांडवों ने विराटनगर को ही क्यों चुना? पांडवों के शत्रुओं में प्रच्छन्न मित्र कहां थे और मित्रों में प्रच्छन्न शत्रु कहां पनप रहे थे? ऐसे ही अनेक प्रश्नों को समेट कर आगे बढ़ती है, महासमर के इस छठे खंड की 'प्रच्छन्न' कथा।"[120]

'प्रच्छन्न' के प्रथम भाग की एक महत्व पूर्ण घटना वह है जिसमें दुर्योधन की दुष्टता और युधिष्टिर का धर्म विवेक हमारे सामने प्रत्यक्ष होता है। पांडव जब द्वैतवन में थे तब दुर्योधन-शकुनि आदि उनका मज़ाक उड़ाने के लिए वहां जाने की योजना बनाते है। यह गांधर्व चित्रसेन का क्षेत्र था जो अर्जुन का मित्र था। चित्रसेन दुर्योधन उसकी मंडली तथा कौरव स्त्रियों को बन्दी बना लेता है। जब धर्मराज को इस बात का पता चलता है तब वह भीम और अर्जुन को तत्काल आदेश देते है कि वह उनको मुक्त करा लावे। कौरवों ने द्रौपदी के साथ बुरा व्यवहार किया था, उसमें उनकी स्त्रियों का तो कोई दोष नहीं था। यहां युधिष्ठिर का जो कथन है वह अत्यन्त चिन्तनीय है। वह कहते हैं कि हमारे आंतरिक युद्ध में वे सौ और हम पाँच हैं, किन्तु आक्रमण जब बाहर का हो तो हम एक सौ पाँच हैं।[121] यहां चित्रसेन अर्जुन को यहां तक समझाता है कि इस घटना का लाभ

उठाते हुए वे अपने वनवास को खत्म करवा सकते हैं। तब अर्जुन कहता है कि यदि ऐसा करना होता तो कौरवों को सम्मुख युद्ध में पराजित कर हम यह सब पहले से करवा लेते। परंतु धर्मराज अपने वचन के पक्के हैं।[122]

धर्मराज की धार्मिक समझ की उत्कृष्टता का एक अन्य उदाहरण हमें यहां यक्ष-प्रश्न के संदर्भ में उपलब्ध होता है। यक्ष-प्रसंग में यक्ष धर्मराज से जो प्रश्न पूछते हैं वे इस प्रकार हैं – (1) पृथ्वी से भारी क्या है? (2) आकाश से ऊँचा कौन हैं? (3) वायु से भी अधिक गति किसकी है? (4) तिनकों से भी अधिक संख्या किसकी है? (5) प्रवासी का मित्र कौन हैं? (6) गृहवासी का मित्र कौन है? (7) संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?

इन प्रश्नों के युधिष्ठिर जो उत्तर देते हैं, उससे उनकी धर्म-न्याय-नीति विषयक समझ स्पष्ट होती है। वे उत्तर क्रमशः इस प्रकार हैं – (1) माता का गौरव पृथ्वी से भी अधिक गरिमा पूर्ण है। (2) पिता आकाश से ऊँचा है। (3) वायु से अधिक गति मन की है। (4) तिनकों से अधिक संख्या चिन्ताओं की होती है। (5) प्रवासी का मित्र सहयात्री है। (6) गृहवासी की मित्र उसकी पत्नी है। (7) संसार में प्रत्येक जीव को मरते देखकर भी व्यक्ति इस भ्रम में जीता है कि उसकी मृत्यु कभी नहीं होगी, यह संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है।[123]

इन प्रश्नों के उत्तर से संतुष्ट हो यक्ष जब कहता है कि तुम अपने मृत भाइयों में से किसी एक जो जीवित करा सकते हो। तब युधिष्ठिर नकुल को जीवित कराने के लिए कहते हैं। यक्ष धर्मराज से कहता है कि अर्जुन संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी है। भीम असाधारण योद्धा है। नकुल में क्या रखा है? इसके उत्तर में धर्मराज जो कहते हैं वहाँ तो उनकी धर्मबुद्धि की पराकाष्ठा ही दृष्टिगोचर होती है। यथा – “मेरी दो माताएं है। कुंती का एक पुत्र मेरे रूप में जीवित है। यदि मैं कुंती के ही दूसरे पुत्र को जीवित कराने का आग्रह रखूंगा, तो माता माद्री के प्रति यह क्रूरता होगी। मैं अनृशंसता का व्रती हूं यक्ष। किसीके प्रति नृशंस होना नहीं चाहता।”[124] यक्ष धर्मराज की इस उत्तम भावना से प्रभावति हो उनके चारों भाइयों को जीवित कर देता है।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

'प्रच्छन्न' की शेष अर्द्ध-कथा में अज्ञातवास की कथा है। विराटनगर में वे छद्म नाम धारण करके रहते हैं यधिष्ठिर अपने लिए 'कंक' नाम चुनते है, जिसके अर्थ है – धर्म, यम, क्षत्रिय, छद्मवेशी ब्राह्मण आदि। मिथ्याभाषण के पाप से बचन के लिए युधिष्ठिर यह नाम चुनते हैं। अर्जुन अपने किन्नर रूप के लिए 'बृहन्नला' नाम चुनता है। इसी क्रम में भीम अपना नाम 'पैरोगव बल्लभ', नकुल 'ग्रंथिक' और सहदेव 'तंतिपाल' रख लेते हैं। द्रौपदी का नाम 'सैरंध्री' पसंद किया जाता है। अपने गुप्त प्रयोग के लिए युधिष्ठिर जय, भीम जयंत, अर्जुन विजय, नकुल जयत्सेन और सहदेव जयद्वल नाम धारण करते हैं।[125] और वे क्रमशः द्यूतकर्मी, रसोइया, नर्तक, अश्वपाल और गोशाला का काम करने का तय करते हैं। पांचाली महारानी सुदेष्णा की दासी बनती है। युधिष्ठिर विराटराज के द्यूत-शिक्षक का काम संभाल लेते हैं। भीम राज परिवार में रसोई बनाने का काम करता है, अर्जुन विराटराज की पुत्री उत्तरा को नृत्य सिखाने का काम करता है, नकुल अश्वशाला तथा सहदेव गोशाला को संभाल लेते हैं।

अज्ञातवास के दश महीने तो भलीभांति व्यतीत हो जाते हैं। किन्तु उसके बाद एक व्यवधान आता है। राजा का साला कीचक लंपट व्यक्ति था। अतः वह पांचाली को जब-तब छेड़ता रहता है। अतः पांचाली का सतीत्व खतरे में पड़ता नज़र आता है। जब कीचक की दुष्प्रवृत्तियां हद से गुजरने लगती हैं तब पांचाली एंकात में भीम को मिलकर उसके संदर्भ में बताती है। फलतः भीम गुप्त ढंग से कीचक का वध कर देता है। कीचक-वध की कथा आर्यावर्त में आग की तरह फैल जाती है, क्योंकि वह अपने समय का माना हुआ मल्ल था। अतः दुर्योधन को संदेह होता है कि कीचक का वध भीम ही कर सकता है। अतः दुर्योधन कर्ण, भीष्म, द्रोण आदि के साथ अपनी शक्तिशाली सेना को लेकर विराटनगर पर आक्रमण कर देता है। उस समय विराटराज अपने राज्य से बाहर थे। अतः विराट-पुत्र उत्तर घबड़ा जाता है, परंतु बृहन्नला के रूप में अर्जुन उसके साथ युद्ध-भूमि पर पहुंचता है और कौरव-सेना को उसके महारथियों सहित पराजित करता है। यहां पांडवों के अज्ञातवास का रहस्य खुल जाता है, परंतु

दुर्योधन यहां भी हाथ मलता रह जाता है क्योंकि तब तक में अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो चुकी थी।[126]

विराटराज के समक्ष उत्तर द्वारा सारा रहस्य प्रकट हो जाने पर मत्स्य-राज विराट उनके साथ मैत्री-संधि करना चाहते हैं और उस उपलक्ष्य में अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन से कराना चाहते हैं, किन्तु अर्जुन कहता है कि उत्तरा मेरी शिष्या है, अतः पुत्रीवत् है, फलतः उसका विवाह उसके पुत्र अभिमन्यु से संपन्न हो।[127]

जब युधिष्ठिर कहते है कि मां अभिमन्यु के विवाह में नहीं आयेंगी, तब द्रौपदी साश्चर्य उसका कारण पूछती है। उत्तर में युधिष्ठिर जो कहते है वह अत्यन्त सांकेतिक है – "विवाह हो अथवा कुछ और । वे नहीं आयेंगी। मैं अपनी मां को जानता हूं। ... वे तो अब हस्तिनापुर से तब हिलेंगी जब या तो हम इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर बैठकर उन्हें लाने के लिए राजकीय रथ भेजें अथवा युद्ध में दुर्योधन को पराजित कर, विजयी के समान हस्तिनापुर जाकर स्वयं उनको अपने रथ में बैठाकर लाएं।" इस पर सहदेव कहते है – "तो यह मां की प्रच्छन्न तपस्या है?"[128]

(7) प्रत्यक्ष (1998):

महाभारत की कथा पर आधृत इस शृंखला का सातवां उपन्यास 'प्रत्यक्ष' चार सौ छप्पन पृष्ठ एवं चौंवालीस अध्यायों में उपन्यस्त है। इसमें महाभारत के 'उद्योगपर्व' और 'भीष्मपर्व' पर कथा विन्यस्त हुई है। उपन्यास का प्रारंभ अभिमन्यु के विवाह-प्रंसग से होता है और उसका अंत महासमर के दसवें दिन के व्यतीत हो जाने के साथ होता है। 34 वें अध्याय से युद्ध का प्रारंभ हुआ है। भीष्म पितामह के आदेश पर ही शिखण्डी को आगे करते हुए अर्जुन भीष्म पितामह के शरीर को बाणों से छलनी कर देता है और लगभग मरणासन्न अवस्था में ही उनको युद्धभूमि से हटाया जाता है।

'प्रच्छन्न' में सबकुछ प्रच्छन्न था। यहां बहुत-कुछ प्रत्यक्ष हो गया है। यहां प्रत्यक्ष हो गया है कि पांडवों के पक्ष में कौन हैं और कौरवों के पक्ष में कौन हैं? जो कृष्ण युधिष्ठर को कहते थे कि

वे केवल अनुमति प्रदान करें, दुर्योधन का वध करके पांडवों को उनका राज्य दिलवा सकते हैं; वे कृष्ण यहां तटस्थ हैं। जो कृतवर्मा कृष्ण का समधी था और कौरवों की राजसभा से कृष्ण को सुरक्षित निकाल लाने में अपने प्राणों की बाजी लगा देता है, वह यहां दुर्योधन की और से युद्ध कर रहा है। आखिर 'प्रच्छन्न' के इन तेरह वर्षों में ऐसा क्या घटित हुआ कि कृष्ण दुष्ट दुर्योधन और अपने भागिनेय व सखा अर्जुन को समकक्ष मान लेते हैं? जिस युधिष्ठिर के राज्य के लिए यह युद्ध होना था, वह युधिष्ठिर ही युद्ध के पक्ष में नहीं है। जिस अर्जुन के बल पर पांडवों को यह लड़ना था वह अर्जुन अपना गांडीव त्याग हताश होकर बेठ गया था। उसे युद्ध नहीं करना था। पांडवों को जिन यादवों का सबसे बड़ा सहारा था, उन यादवों में से कोई नहीं आया लड़ने, तो महाभारत का युद्ध कौन लड़ रहा था? अकेले कृष्ण? जिनके हाथों में अपना कोई शस्त्र भी नहीं था? अर्जुन शिखंडी को सामने रख भीष्म का वध करता है अथवा पहले चरण में भीष्म को शिखंडी से बचाता रहा है? और फिर अपने जीवन और युग से हताश भीष्म को क्षत्रियोचित मृत्यु देने के लिए उनसे सहयोग करता है? कर्ण का रोष क्या था और क्या था कर्ण का धर्म? कर्ण का चरित्र? इस खण्ड में इन सभी प्रश्नों के उत्तर हैं और बहुत कुछ प्रत्यक्ष हो गया है। इस खण्ड में कुन्ती और कर्ण का प्रत्यक्ष साक्षात्कार भी हुआ है और कुन्ती ने स्वयं कर्ण की महानता को स्वीकृत किया है। किन्तु सबसे अधिक प्रत्यक्ष हुए नायकों के नायक श्रीकृष्ण। लगता है कि एक बार कृष्ण प्रकट हो जाएं तो अन्य प्रत्येक पात्र उनके सम्मुख वामन हो जाता है। और इसी खण्ड में है कृष्ण की गीता... भगवदगीता... एक उपन्यास में गीता, जो गीता भी है और उपन्यास भी। इस खण्ड को पढ़ने के पश्चात् निश्चित रूप से आप अनुभव करेंगे कि आप कृष्ण को बहुत जानते थे, पर फ़िर भी इतना तो नहीं ही जानते थे।[129]

कृष्ण का अद्भुत चरित्र यहां प्रत्यक्ष हुआ है। वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ योद्धा, सर्वश्रेष्ठ चिंतक, सर्वश्रेष्ठ रातनीतिज्ञ, सर्वश्रेष्ठ मित्र एवं सर्वश्रेष्ठ प्रेमी है। दुर्योधन प्रसन्न है कि कृष्ण की नारायणी सेना

कौरवों के पक्ष में लड़ रही है। किन्तु क्या उनकी युद्ध-निष्ठा अखंडित रहेगी? क्या उसकी उपस्थिति उनकी गुप्त व्यूह-रचना को प्रकट नहीं करेगी? कृष्ण कृतवर्मा और सात्यकि को पहले से ही सचेत करके कौरव-सभा में भेजते हैं, क्योंकि कृष्ण को दुर्योधन की संभवित चाल पहले ही ज्ञात थी और इसलिए उसकी काट भी उन्होंने सोच रखी थी। इससे कृष्ण की राजनीतिज्ञता व कूट्नीतिज्ञता प्रत्यक्ष होती है। कृष्ण पहले द्रुपद के दूत को विष्टि के लिए भेजते हैं, फ़िर वे स्वयं विष्टिकार होकर जाते हैं जबकि अपनी प्राण-सखा द्रौपदी- कृष्णा को वे वचन दे चुके हैं कि कौरव दंडित होंगे। क्या कृष्ण सचमुच चाहते थे कि युद्ध न हो? 'प्रत्यक्ष' में भी यह तो 'प्रच्छन्न' ही रहा है। वस्तुतः कृष्ण जानते थे कि युद्ध होगा और उनको यह भी ज्ञात था कि द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म आदि न चाहते हुए अपने-अपने कारणों से कौरवों के पक्ष में लड़ने को विवश होंगे। परंतु उनकी युद्ध-निष्ठा और नैतिकता पर प्रहार करके उनकी शक्ति को कुछ तो कम किया ही जा सकता है और वही कृष्ण करते हैं। व्यक्ति को यदि मालूम हो कि वह अधर्म के लिए लड़ रहा है तो उसकी आधी शक्ति व निष्ठा तो यों ही समाप्त हो जाती है। उसका तन लड़ता है, मन नहीं। पहले स्वयं कर्ण को मिलना और फ़िर कुन्ती को उसके पास भेजना। कर्ण का वचन देना कि पार्थ को छोड़कर वह अन्य किसी पांडव पर प्रहार नहीं करेगा। यहां भी कृष्ण अपनी राजनीतिक चाल तो चल ही जाते हैं। युद्ध के बराबर पहले कुन्ती को कर्ण के पास भेजकर एक प्रकार से कर्ण के नैतिक-बल में तो सेंध लगा ही देते हैं। कर्ण का यह कहना कि किसी भी स्थिति में उसके पांच पुत्र तो रहेंगे ही।[130] यह भी प्रत्यक्ष हो गया है कि जीत पांडवों की ही होगी।

विराटपर्व के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध तो होगा ही। कृष्ण जानते हैं कि अर्जुन उनके पास आयेगा, वे यह भी जानते हैं कि बदली हुई स्थितियों में दुर्योधन भी आयेगा। दुर्योधन पहले आता है पर स्वभाववश वह कृष्ण के सिरहाने खड़ा रहता है। अर्जुन बाद में आता है और पैताने की और खड़ा हो जाता है। अर्जुन के आ जाने पर कृष्ण आंखे खोलते हैं और अर्जुन को आने का

प्रयोजन पूछते हैं। तब दुर्योधन कहता हैं कि प्रथम वह आया है। प्रयोजन जानने पर कृष्ण कहते हैं कि उन्होंने अर्जुन को पहले देखा अतः मांगने का अधिकार पहले उसका है। इसके बाद वे स्पष्ट करते हैं कि एक तरफ़ उनकी नारायण सेना होगी और दूसरी तरफ़ वे अकेले बिना हथियार धारण किये। दुर्योधन समझता है कि कृष्ण यहां भी चाल चल गये, अब अर्जुन नारायण सेना मांग लेगा और निहत्ये कृष्ण को लेकर वह क्या करेगा? परंतु उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता जब अर्जुन निहत्ये कृष्ण को अपने पक्ष में मांगता है। इस बहाने कृष्ण अर्जुन की निष्ठा की परीक्षा भी कर लेते हैं।

इस खण्ड की घटनाओं से युद्ध का परिणाम भी प्रत्यक्ष हो गया है। स्वयं गुरु द्रोण अर्जुन को कहते हैं कि युद्ध में कौरव विजयी होंगे ऐसा भ्रम उनके मन में नहीं है। जब अर्जुन कहता है कि जिस पक्ष में आप, पितामह और आचार्य कृप हो, उन्हें कौन पराजित कर सकता है? तब उसके उत्तर में गुरु द्रोण कहते हैं—"जय तो धर्म की होती है पुत्र! और धर्म वहां है जहां कृष्ण है।" तब अर्जुन पुनः कहता है कि केशव तो शस्त्र उठायेंगे नहीं। "तब द्रोण जो कहते हैं अत्यंत गंभीर व सांकेतिक है—"यह तो दुर्योधन का तर्क है पुत्र! तुम्हारा नहीं। ..."[131]

रही-सही कसर युधिष्ठर का उदबोधन पूर्ण कर देता है जिसमें वह धर्म के पक्ष में लड़ने वाले तमाम-तमाम लोगों को आमंत्रित करते हुए भीष्म पितामह तथा गुरु द्रोण को प्रणाम करते हुए उनके आशीर्वाद की कामना करते हैं। युद्ध के पूर्व अर्जुन का विषाद भी आवश्यक था, अन्यथा उसे कृष्ण की विराटता का ज्ञान भी कैसे होता। भीष्म की तीन प्रतिज्ञाएं भी पांडव के विजय को प्रशस्त करने वाली हैं— (1) वे किसी पांडव का वध नहीं करेंगे, (2) वे कीसी स्त्री या स्त्री रह चुके व्यक्ति पर वार नहीं करेंगे और (3) जब तक सेना का नेतृत्व उनके पास रहेगा तब तक उनकी अधीनता में कर्ण नहीं लड़ेगा।[132]

उपन्यास के इस खंड में महासमर के दश दिनों के युद्ध का ब्यौरा है। इसमें भीष्म पितामह, गुरु द्रोण, अर्जुन, अभिमन्यु,

युधिष्ठिर, भीम, घटोत्कच, इरावान आदि के घमासान युद्ध का वर्णन किया है। दोनों और के सैनिकों के खेत रहने का वर्णन है। युद्ध में जो मुख्य हानि होती है उसमें विराटराज का पुत्र उत्तर और अर्जुन-उलूपी का पुत्र इरावान मारा जाता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है भीष्म पितामह अर्जुन को जो निर्देश देते हैं उसके अनुसार शिखण्डी को सामने कर उनको बाणों से बिंध दिया जाता है और लगभग मरणासन्न अवस्था में युद्धभूमि से हटाया जाता है।

(8) निर्बन्ध (2000) :

डॉ., नरेन्द्र कोहली की महाभारत पर आधारित कथामाला का अंतिम उपन्यास है—'निर्बन्ध'। इस तरह 'बंधन' से लेकर 'निर्बन्ध' तक की यह कथायात्रा महाभारत के भीष्म की भी है और विस्तृत और व्यापक धरातल पर देखा जाय तो यह कथा जीवन-संग्राम में जूझते प्रत्येक व्यक्ति की भी है। व्यक्ति जब इस संसार में आता है तो जन्म के साथ ही वह अनेक प्रकार के बंधनों में जकड़ जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त वह अपने अधिकार, कर्तव्य, न्याय, अन्याय के लिए निरंतर संघर्षशील रहता है और अन्त में वह इन सब सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाता है। भीष्म से आरंभ हुआ 'बंधन'' 'निर्बन्ध' तक आते-आते भीष्म की इच्छामृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार देखा जाय तो भीष्म ही इस महाभारत और महासमर के भी महानायक लगते हैं, परंतु बीच-बीच में अलग-अलग प्रसंगों में और अलग-अलग पर्वों में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, कृष्ण आदि भी इसके नायक ठहरते हैं। उपन्यास-शृंखला के द्वितीय खण्ड 'अधिकार' से कृष्ण का आगमन उपन्यास में होता है तो वह लगभग तमाम कार्य-कलापों में 'Present everywhere but visible Now here' उक्ति के अनुसार हमें अपनी उपस्थिति की प्रतीति कराते हैं। वह कहां नहीं होते?

'निर्बन्ध' उपन्यास 43 अध्याय और 528 पृष्ठों में उपन्यस्त हुआ है।इसकी कथा मूल महाभारत के द्रोणपर्व से आरंभ होकर

शांतिपर्व तक चलती है। "कथा का अधिकांश भाग तो युद्धक्षेत्र में से होकर ही अपनी यात्रा करता है। किन्तु यह युद्ध केवल शस्त्रों का युद्ध नहीं है। यह टकराहट मूल्यों और सिद्धान्तों की भी है और प्रकृति और प्रवृत्तियों की भी। घटनाएं और परिस्थितियां अपना महत्व रखती हैं। वे व्यक्ति के जीवन की दशा और दिशा निर्धारित अवश्य करती हैं; किन्तु यदि घट्नाओं का रूप कुछ और होता तो क्या मनुष्यों के सम्बन्ध कुछ और हो जाते? उनकी प्रकृति बदल जाती? कर्ण को पहले ही पता लग जाता कि वह कुन्ती का पुत्र है तो क्या वह पांडवों का मित्र हो जाता? कृतवर्मा और दुर्योधन तो श्रीकृष्ण के समधी थे, वे उनके मित्र क्यों नहीं हो पाए? बलराम श्रीकृष्ण के भाई होकर भी उनके पक्ष में क्यों नहीं लड़ पाए? अंतिम समय तक वे दुर्योधन की रक्षा का प्रबंध ही नहीं, पांडवों की पराजय के लिए प्रयत्न क्यों करते रहे? ऐसे ही अनेक प्रश्नों से जूझता है यह उपन्यास।"[133]

उपन्यास का शीर्षक 'निर्बन्ध भी अनेक दृष्टियों से सटीक और सार्थक प्रतीत होता है। शांतिपर्व के अंत में भीष्म तो बंधनमुक्त हुए ही है, पांडवों के बंधन भी एक प्रकार से टूट गए हैं। उनके सारे बाहरी शत्रु मारे गए हैं। अपने संबंधियों, प्रियजनों और गुरुजनों में से भी अधिकांश को भी जीवन-मुक्त होते उन्होंने देखा है। अतः एक प्रकार से पांडवों के लिए भी माया का बंधन टूट गया है। अब वे खुली आंखों से इस जीवन और सृष्टि का वास्तविक रूप देख सकते है। अब वे इस मोड़ पर आ खड़े हैं, जहां से स्वर्गारोहण भी कर सकते हैं और संसारारोहण भी। "प्रत्येक चिंतनशील मनुष्य के जीवन में एक वह स्थल आता है, जब उसका बाहरी महाभारत समाप्त हो जाता है और वह उच्चतर प्रश्नों के आमने-सामने-आ खड़ा होता है। पाठक को उसी मोड़ तक ले आया है महासमर का यह खण्ड 'निर्बन्ध'।"[134]

उपन्यास के अंत में कृपाचार्य भीष्म से पूछते हैं—"क्या आप उत्तरायण में प्राण त्यागना चाहते हैं?" उत्तर में भीष्म कहते है—"हां! उत्तरायण में। ... मैं उस समय विदा होना चाहता हूं, जब मेरी बुद्धि प्रकाशित हो रही हो, मेरा मन प्रसन्न हो, निर्मल हो। मैं

अवसाद में रोते हुए, आसक्ति के मेघों के अज्ञान में लिपटा हुआ, इस संसार से विदा होना नहीं चाहता। मैं मुक्त होकर यहां से जाना चाहता हूं, ताकि लौटकर फ़िर न आना पड़े। आजीवन स्वयं को बांधे रखा है, अब निर्बन्ध होकर जाना चाहता हूं। इसलिए मैं प्रकृति के उत्तरायण की भी प्रतीक्षा करूंगा और अपने शरीर के उत्तरायण की भी।"[135]

इस प्रकार उपन्यास का यह शीर्षक भीष्म के जीवन से भी पूर्णतया सम्बन्धित है। 'आजीवन स्वयं को बांधे रखा है।' यह वाक्य द्विअर्थी है। यहां भीष्म स्वयं अपने नीति-नियमों और सिद्धान्तों में बंधे रहने की बात करते हैं, दूसरे माता सत्यवती ने उनको कुरुवंश की रक्षा के लिए जो आदेश दिए, उनके कर्म-बंधन की बात भी है।

'निर्बन्ध' उपन्यास का प्रारंभ युद्ध के ग्यारहवें दिन से होता है। मरणासन्न अवस्था में भीष्म पितामह को युद्धभुमि से हटाने के उपरांत गुरु द्रोण कौरवों के सेनापति बनते हैं। दुर्योधन योजना बनाता है कि अर्जुन को त्रिगर्तराज सुशर्मा संशसक-युद्ध के बहाने युद्धभूमि से दूर ले जाएं और उसकी अनुपस्थिति में युद्धिष्ठिर को बंदी बना दिया जाय। सुशर्मा का लक्ष्य अर्जुन से युद्ध करना नहीं, बल्कि समय व्यतीत करना था। वह इधर-उधर भागता फ़िरता है। दुर्योधन अपनी योजना में सफ़ल भी हो जाता किन्तु सही वक्त पर अर्जुन आ जाता है। उस दिन वृक, सत्यजित औरशतानिक (विराटराज का छोटा भाई) गुरु द्रोण के हाथों मारे जाते हैं।[136]

युद्ध के तेरहवें दिन सुशर्मा पुनः अर्जुन का संशसक युद्ध के लिए ललकारता है और अर्जुन कृष्ण के मना करने पर भी अपने क्षत्रिय धर्म के निर्वाह के लिए उसके पीछे जाता है। अर्जुन की अनुपस्थिति में गुरु द्रोण चक्रव्यूह-युद्ध की योजना बनाते हैं। इस युद्ध का अभिज्ञान कृष्ण, अर्जुन, प्रद्युम्न और गुरु द्रोण को ही था। तब अभिमन्यु कहता है कि वह चक्रव्यूह भेद तो सकता है पर उसमें से निकलने का ज्ञान उसे नहीं है। तब पांडव तय करते हैं कि यदि अभिमन्यु चक्रव्यूह भेदने में सफ़ल हो जाता है तो शेष युद्ध वे किसी तरह संभाललेंगे। परंतु सिन्धु नरेश जयद्रथ उस दिन पांडवों के लिए

अभेद्य प्राचीर बन जाता है और युद्ध सारे नियमों को ताक पर रखते हुए द्रोण, कृपाचार्य, शकुनि आदि मिलकर अभिमन्यु का वध कर डालते हैं।[137]

इसके बाद जयद्रथ-वध प्रसंग, 'नरो वा कुंजरो वा' प्रसंग और निराश-निहत्थे गुरु द्रोण का मारा जाना, कर्ण का सेनापति होना, शैल्य द्वारा उसका सारथ्र्य, शैल्य के व्यंग-बाणों से कर्ण का आहत होना, कर्ण के रथ के पहिये का किचड़ में फंसना, क्षत्रिय-धर्म की परवाह न करते हुए कृष्ण के आदेश पर अर्जुन द्वारा कर्ण पर बाणों का प्रहार, कर्ण का वध, दु:शासन की छाती फोड़कर भीम द्वारा उसके शोणित को पीते हुए भीम का अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना, घटोत्क्च का मारा जाना, दुर्योधन-पुत्र लक्ष्मण का मारा जाना, शकुनि तथा उसके पुत्र उलूक का मारा जाना जैसी घटनाएं उपन्यस्त हुई हैं।[138]

इस प्रकार कौरव-सेना के प्रायः सभी बड़े योद्धा और महारथी मारे जाते हैं। बच जाते हैं केवल – अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य और कृतवर्मा। दुर्योधन द्वैपायन सरोवर में जाकर छिप जाता है। पांडव उसे खोज निकालते हैं। फिर भीम और दुर्योधन के बीच वासुदेव बलराम की अध्यक्षता में गदायुद्ध होता है। वहां भी कृष्ण के कहने पर भीम गदायुद्ध के नियमों को एक तरफ करते हुए दुर्योधन की जंघाओं को चूर-चूर कर देता है।[139]

मरणासन्न दुर्योधन को ढूंढते हुए कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा द्वेपायन सरोवर की ओर जाते हैं और उसे ढूंढ लेते हैं। दुर्योधन सेनापति के रूप में अश्वत्थामा का अभिषेक करता है। पांडव कौरवों के पराजय से कुछ लापरवाह-से हो जाते हैं तब अश्वत्थामा उनके शिविर में चोरी-छिपे घुसकर द्रौपदी के पॉच पुत्रों, शिखण्डी और धृष्टद्युम्न का वध कर देता है।[140] इस पर द्रौपदी पहले तो अश्वत्थामा के मस्तक की मांग करती है, परंतु बाद में सबके समझाने पर उसके मस्तक में स्थित मणि को लेकर संतुष्ट हो जाती है और अश्वत्थामा को घृणित, गर्हित, शापित जीवन जीने के लिए छोड़ दिया जाता है। शोकसंतप्त अवस्था में गांधारी कृष्ण को श्राप देती है, परंतु अंततः

कृष्ण उसके मन का समाधान करते हैं। युधिष्ठिर, गांधारी, धृतराष्ट्र आदि स्वस्थ होने का प्रयत्न करते हैं और फिर मृत्युशैया पर लेटे हुए पितामह से मिलने जाते हैं, जहां कृष्ण के सानिध्य में उत्तरायण पक्ष में भीष्म पितामह अपने प्राणों का त्याग करते हैं।

इस प्रकार एक विषादयुक्त वातावरण में इस महासमर का अंत होता है। दोनों पक्षों को भयंकर क्षति पहुंची है। इरावान, अभिमन्यु, घटोत्क्च, सभी कौरव (युयुत्सु को छोड़कर), द्रुपद, धृष्टद्युम्न, शिखंडी, द्रौपदी के सारे पुत्र मारे जाते हैं। भीष्म तथा पांडवों के सारे बंधन यहां मुक्त हो जाते है। यहां जीवन और सांसारिक बंधन ही नहीं टूटे हैं, बल्कि नीति-नियम, मर्यादा और धर्म के भी कई-कई बंधन टूटे हैं।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक पहुंच सकते हैं –

(1) प्रस्तुत अध्याय में कुल बारह उपन्यासों का विश्लेषण हुआ है, जिनमें से चार उपन्यास रामायण पर आधारित हैं, और आठ उपन्यास महाभारत की कथा पर आधृत हैं। रामायण पर आधृत उपन्यास क्रमशः इस प्रकार हैं – 'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर', और 'युद्ध'। 'दीक्षा' वह पृष्ठभूमि है जिस पर राम को आगे बढ़ना है। यहां उनके चरित्र के सभी नीति-नियम व सिद्धान्त निश्चित होते हैं। 'अवसर' में उनको वह मौका मिलता है कि अपने सिद्धान्तों का आचरण कर सकें। 'संघर्ष की ओर' में 'युद्ध' की पृष्ठभूमि निर्मित होती है। उसी तरह महाभारत पर आधृत उपन्यास इस प्रकार हैं – 'बंधन', 'अधिकार', 'कर्म', 'धर्म', 'अंतराल', 'प्रच्छन्न', 'प्रत्यक्ष' और 'निर्बन्ध'। 'बंधन' से 'निर्बन्ध' तक की यह यात्रा भीष्म की भी है और प्रतीकात्मक अर्थों में देखें तो जीव-मात्र की है।

(2) डॉ. नरेन्द्र कोहली के ये उपन्यास रामायण और महाभारत की कथा पर आधारित है, अतः पौराणिक उपन्यास हैं, पर पौराणिक आख्यान नहीं हैं। अतः उन्होंने उक्त दोनों ग्रन्थों में जो चमत्कारपूर्ण

घटनाएं हैं और जो मिथक कथाएं हैं उनका आधुनिक व तर्कसंगत तरीके से निरसन किया है। परवर्ती अध्याय में उन पर विस्तृत चर्चा होगी।

(3) डॉ. कोहली ने मूल कथा के स्वरूप में अधिक अंतर न आवे इस तरह कई प्रसंगों को दूसरे ढंग से रखने का यत्न किया है।

(4) रामायण पर आधृत उपन्यासों में उन्होंने वानर, गृध्र, ऋक्ष आदि को मनुष्य रूप में चित्रित किया है। वस्तुतः वे दक्षिण की कुछ आदिम जाति के लोग थे। परंतु रावण को डॉ. कोहली ने 'राक्षस' की कोई जाति-विशेष न मानकर एक प्रवृत्ति माना है। जबकि आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'राक्षस' को एक जाति-विशेष के रूप में चित्रित किया है। डॉ. कोहली के मतानुसार राक्षस कोई भी व्यक्ति हो सकता है। जो अत्याचारी होगा, अन्यायी होगा, आततायी होगा, स्वार्थी और भौतिकवादी होगा वह राक्षस है। और इस तरह राक्षस किसी भी जाति या गोत्र का व्यक्ति हो सकता है।

(5) इन दोनों श्रृंखला के उपन्यासों में लेखक ने यथास्थान समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि समस्याओं का निरूपण किया है। अतः पौराणिक होने के साथ-साथ ये उपन्यास समकालीन भी हैं।

(6) महाभारत भारतीय मनीषा का धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, और समाजशास्त्र है। उसमें वह सबकुछ है, जो किसी-न-किसी रूप में हमारे चारों और घटित हो रहा है। उसमें तत्कालीन समाज के रीति-रिवाज और प्रथाओं का भी वर्णन उपलब्ध होता है। उसमें नियोग-विधि, शुल्क-विवाह, अनुलोम-विवाह, प्रतिलोम विवाह, राक्षस-विवाह, अनुबंध-विवाह, गांधर्व-विवाह, अस्थायी-विवाह आदि विवाहों के कई प्रकार हैं; इनमें से अनुबंध-विवाह या अस्थायी विवाह तो हमारे आजकल के 'Live in relationship' जैसे हैं। इसी तरह संतति, विशेषतः पुत्र की भी कई कोटियां मिलती हैं, जैसे औरस-पुत्र, कानीन पुत्र, क्षेत्रज पुत्र आदि-आदि। धृतराष्ट्र, पांडु, विदुर और पांडव नियोग-विधि से जन्मे थे। व्यास कानीन पुत्र थे। नियोग-विधि से उत्पन्न

पुत्र को क्षेत्रज पुत्र कहते थे। महाभारत काल में ऋषि परंपरा में कानीन पुत्र को मान्यता थी, परंतु क्षत्रिय-समाज में से उसे अस्वीकृत कर दिया गया था।

(7) रामायण-निरूपित वानर-समाज में भाई की पत्नी को रख लेने का रिवाज था। आज भी भारत की कई जातियों में बड़े भाई की मृत्यु के उपरान्त उसकी पत्नी का पुनर्विवाह छोटे भाई से करा दिया जाता है। पंजाब में उसे 'चादर डालना' कहते हैं, गुजरात में 'दियरवटा'।

(8) रामायण और महाभारत में तत्कालीन यज्ञों का निर्देश भी मिलता है, जिसमें निम्नलिखित मुख्य हैं – अश्वमेघ यज्ञ, राजसूय यज्ञ, पुत्रेष्टि यज्ञ आदि-आदि। कई बार अनिष्ट-निवारण के लिए भी धार्मिक यज्ञ होते थे। वैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए भी यज्ञ किए जाते थे। विश्वामित्र के यज्ञ, अगस्त्य के यज्ञ उसी प्रकार के माने जायेंगे। आज जैसे मुख्यतः दो विचारधाराएं मिलती हैं – दक्षिणपंथ और वामपंथ – उसी तरह रामायण-महाभारत काल में भी विभीन्न विचारधाराएं थीं। अतएव दो कोटियों के ऋषि भी मिलते हैं। वसिष्ठ, परशुराम आदि जहां कट्टरवादी विचारधारा के थे; वहां विश्वामित्र, वाल्मीकि, अगस्त्य आदि प्रगतिवादी उदार विचारधारा वाले ऋषि थे।

(9) उस समय के दिव्यास्त्र और देवास्त्र आज के अणुबम-परमाणुबम या उद्जनबम की तरह थे जो भयंकर विनाशकारी होते थे। उस समय का देव-समाज आज की महा-सत्ताओं की तरह का हो सकता है। इन उपन्यासों में तत्कालीन समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार के युद्धों का भी जिक्र मिलता है, यथा – द्वन्द्व-युद्ध, द्वैरथ-युद्ध, संशप्तक युद्ध, सम्मुख-युद्ध, चक्रव्यूह युद्ध आदि। शस्त्रास्त्रों में बाण, तलवार, भाला, कटार, गदा आदि होते थे।

(10) इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कोई भी युग या काल हो, मनुष्य की मूलभूत वृत्तियों में ज्यादा फरक नहीं आया है। बाह्य-परिस्थितियां बदलती है, कुछ नये उपकरण आते हैं, परंतु आंतरिक मूलभूत प्रवत्तियों में कोई बदलाव नहीं आता है। तब कौरव और

पांडव लड़े थे आज भारत और पाकिस्तान। जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि प्रत्येक व्यक्ति या जाति या राष्ट्र स्वयं के दृष्तिकोण को ही सही मानता है, धर्म-सम्मत या न्याय-सम्मत मानता है। सारे युद्धों के कारण यही है। युद्ध मात्र और मात्र, विनाश को ही लाता है। युद्ध के बाद विषाद की स्थिति का ही निर्माण होता है। युद्ध में तमाम अच्छे मानवीय मूल्यों का नाश हो जाता है। हासिल कुछ भी नहीं। फिर भी युद्ध होते थे, होते हैं और होते रहेंगे।

सन्दर्भानुक्रम :

1. दो सौ बावन उपन्यासों की समीक्षा : डॉ. सुषमा गुप्ता : पृ. 205 ।
2. द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डॉ. त्रिभुवनसिंह : पृ.396 ।
3. नरेन्द्र कोहली ने कहा : सं. ईशान महेश : पृ. 27 ।
4. नरेन्द्र कोहली ने कहा : सं. ईशान महेश : पृ. 37 ।
5. द्रष्टव्य : दीक्षा : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय - 1 : पृ. 171-177 ।
6. द्रष्टव्य : दीक्षा : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय - 1 : पृ. 177-184 ।
7. नरेन्द्र कोहली ने कहा : पृ. 41 ।
8. रामकथा : भक्ति और दर्शन : डॉ. विश्वम्भर-दयाल अवस्थी : पृ. 28 ।
9. द्रष्टव्य : दीक्षा : अभ्युदय-1 : पृ. 79 ।
10. द्रष्टव्य : दीक्षा : अभ्युदय-1 : पृ. 149 ।
11. द्रष्टव्य : दीक्षा : अभ्युदय-1 : पृ. 184 ।
12. द्रष्टव्य : दीक्षा : अभ्युदय-1 : पृ. 171-172 ।
13. द्रष्टव्य : दीक्षा : अभ्युदय-1 : पृ. 16 ।
14. द्रष्टव्य : दीक्षा : अभ्युदय-1 : पृ. 38 ।
15. द्रष्टव्य : दीक्षा : अभ्युदय-1 : पृ. 43 ।
16. द्रष्टव्य : आधुनिक हिन्दी उपन्यास : संपादकत्रय – भीष्म साहनी, रामजी मिश्र तथा डॉ. भगवतीप्रसाद निदारिया : पृ. 531 ।
17. द्रष्टव्य : चिंतनिका : डॉ. पारूकान्त देसाई : पृ. 47 ।
18. दीक्षा : अभ्युदय – 1 : पृ. 47 ।
19. द्रष्टव्य : अवसर : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय – 1 : पृ. 235-236 ।
20. द्रष्टव्य : अवसर : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय – 1 : पृ. 263-264 ।

21. द्रष्टव्य : अवसर : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय – 1 : पृ. 216 ।
22. द्रष्टव्य : अवसर : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय – 1 : पृ. 297 ।
23. द्रष्टव्य : अवसर : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय – 1 : पृ. 212 ।
24. द्रष्टव्य : अवसर : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय – 1 : पृ.314 ।
25. द्रष्टव्य : अवसर : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय – 1 : पृ.234 ।
26. अपने अपने राम : डॉ. भगवानसिंह : पृ. 10 ।
27. नरेन्द्र कोहली ने कहा : पृ. 30-31 ।
28. वही : पृ. 31 ।
29. युद्ध : डॉ. कोहली : अभ्युदय – 2 : पृ. 8 1
30. वही : पृ. 126 ।
31. द्रष्टव्य : युद्ध : डॉ. कोहली : अभ्युदय – 2 : पृ. 148 ।
32. द्रष्टव्य : वही : पृ. 148-187 ।
33. वही : पृ. 187-344 ।
34. वही : पृ. 379 ।
35. वही : पृ. 423 ।
36. वही : पृ.469 ।
37. वही : पृ. 471-472 ।
38. वही : पृ. 492 ।
39. वही : पृ. 512 ।
40. वही : पृ. 561 ।
41. वही : पृ. 580 ।
42. वही : पृ. 608 ।
43. वही : पृ. 614 ।
44. वही : पृ. 613 ।
45. अभ्युदय – 2 : प्रकाशकीय वक्तव्य : प्रथम मुखपृष्ठ से।

46. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में महाभारत के पात्र : डॉ. जे. आर. बोरसे : पृ. क्रमशः 68 ।
47. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में महाभारत के पात्र : डॉ. जे. आर. बोरसे : पृ. क्रमशः 7 ।
48. महाभारत : आदिपर्व : 1 / 266।
49. वही : 1 / 272-273 ।
50. वही : पृ. 68 ।
51. द्रष्टव्य : भारतीय साहित्य कोश : सं. डॉ. नगेन्द्र : पृ. 938-939 ।
52. द्रष्टव्य : 'महाभारत : दक्षिण-पूर्व ऐशिया में' : मूल संकलन कर्ता – श्री सालेह : अनुवाद -- डॉ. चन्द्रदत्त पालिवाल : प्रस्तावना से।
53. वही : प्रस्तावना से।
54. हिन्दी साहित्य की भूमिका : डॉ. हजारिप्रसाद द्विवेदी : पृ. 183 ।
55. संस्कृति के चार अध्याय : डॉ. रामधारीसिंह दिनकर : पृ. 161-162 ।
56. द्रष्टव्य : महाभारत : आदिपर्व : 2 / 388 ।
57. डॉ. पारूकान्त देसाई के व्याख्यान से ।
58. महाभारत : अमृतलाल नागर : भूमिका से ।
59. See : Mahabharata : C. Rajgopalachari : Preface : P – 6 .
60. Ibid : P – 6 .
61. स्वातंत्रोत्तर हिन्दी काव्य में महाभारत के पात्र : डॉ. जे. आर. बोरसे : पृ. 69 ।
62. बंधन : डॉ. कोहली : उपन्यास के द्वितीय मुखपृष्ठ से ।
63. द्रष्टव्य : वही : पृ. 66 ।
64. वही : 244-277 ।
65. द्रष्टव्य : बंधन : पृ. 419-430 ।
66. द्रष्टव्य : वही : पृ. 471-472 ।
67. आपका बण्टी : मन्नू भंडारी : पृ. 31-32 ।
68. मानसमाला : डॉ. पारुकान्त देसाई : पृ. 22 ।

69. अधिकार : डॉ. कोहली : द्वितीय फ्लेप से ।
70. द्रष्टव्य : वही : पृ. : 9-32 ।
71. वही : पृ. : 49-81 ।
72. वही : पृ. : 379 ।
73. वही : पृ. : 380 ।
74. वही : पृ. : 318 ।
75. डॉ. पारूकान्त देसाई का एक दोहा।
76. अधिकार : पृ. 329 ।
77. वही : पृ. 382 ।
78. वही : पृ. 383 ।
79. वही : पृ. 383 ।
80. वही : पृ. 380 ।
81. कर्म : पृ. 75 ।
82. वही : पृ. 111 ।
83. वही : पृ. 192 ।
84. वही : पृ. 312 ।
85. वही : पृ. 111-392 ।
86. वही : पृ. 392 ।
87. धर्म : डॉ. कोहली : प्रकाशकीय वक्तव्य से ।
88. वही : पृ. 22 ।
89. वही : पृ. 65 ।
90. वही : पृ. 79 ।
91. वही : पृ. 94 ।
92. वही : पृ. 151 ।
93. वही : पृ. 177 ।
94. वही : पृ. 234-235 ।
95. द्रष्टव्य : कर्म : 185 ।
96. धर्म : पृ. 305 – 306 ।
97. वही : पृ. 334 ।
98. वही : पृ. 342 ।
99. वही : पृ. 405 ।

100. वही : पृ. 402 ।
101. वही : पृ. 413 ।
102. वही : पृ. 95-100 ।
103. वही : पृ. 118-119 ।
104. अंतराल : डॉ. कोहली : प्रकाशकीय वक्तव्य से ।
105. अंतराल : पृ. 104 ।
106. वही : पृ. 141 ।
107. वही : पृ. 148 ।
108. वही : पृ. 162 ।
109. वही : पृ. 167 ।
110. वही : पृ. 180 ।
111. वही : पृ. 209 ।
112. वही : पृ. 216 ।
113. वही : पृ. 267 ।
114. वही : पृ. 306 ।
115. वही : पृ. 363 ।
116. वही : पृ. 323 ।
117. नालंदा विशाल शब्दसागर : पृ. 885 ।
118. प्रच्छन्न : डॉ. कोहली : प्रकाशकीय से ।
119. वही : पृ. 244 ।
120. वही : प्रकाशकीय से ।
121. वही : 81 ।
122. वही : पृ. 91 ।
123. वही : पृ. 313-316 ।
124. वही : पृ. 317 ।
125. वही : पृ. 326-328 ।
126. वही : पृ. 603 ।
127. वही : पृ. 615 ।
128. वही : पृ. 617 ।
129. प्रत्यक्ष : डॉ. कोहली : प्रकाशकीय से ।
130. वही : पृ. 309 ।

131. वही : पृ. 360 ।
132. वही : पृ. 320 ।
133. निर्बन्ध : डॉ. कोहली : उपन्यास के द्वितीय फ्लेप से ।
134. निर्बन्ध : डॉ. कोहली : उपन्यास कि द्वितीय फ्लेप से ।
135. वही : पृ. 527 ।
136. वही : पृ. 61-62 ।
137. वही : पृ. 88 ।
138. वही : पृ. 150, 259, 381, 404 ।
139. वही : पृ. 476 ।
140. वही : पृ. 494 ।

* * *